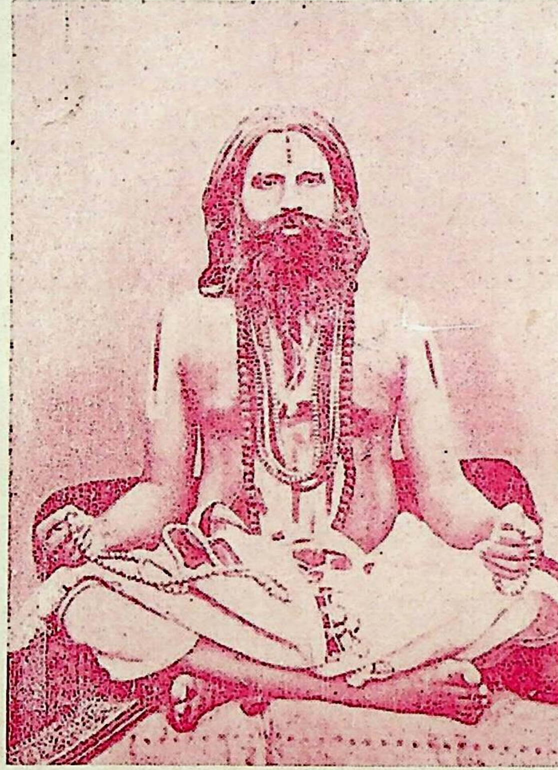
श्रीमतेरामानुजायनमः ।



सर्वागमार्णव मगाधमलं प्रमथ्य यःस्तोत्र
रत्न मिदमुद्धृतवाननर्घ्यम् । सोऽयं
महर्षि रभय प्रदपाणिपद्मः
श्री मद्गुरु र्विजयते
बदरो प्रपन्नः ॥

श्रीमतेरामानुजाय नमः

❋ श्रीस्वामिनिर्मितपद्यरत्नसँग्रहः ❋

(जिसके प्रथम शंख चक्र तिलकका माहात्म्य,
और एकादशी रामनवमी जन्माष्टमी का
सूक्ष्म निर्णय भी रख दिया गया है)

— प्रकाशक —
श्रीमहराजकुमार लाल बलवन्तसिंहजी
देवराजनगर—
(सं० १९८३)

॥ श्रीमतेरामानुजाय नमः ॥

भूमिका



यंवैश्वसन्त मनुविश्वसृजः श्वसन्ति यंचेकितान मनु चित्तयउच्चकन्ति ॥ भूमण्डलं सर्षपायति यस्यमूर्ध्नितस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥

जिसके श्वास ग्रहण करने से ब्रम्हादिकों को प्राण वायु की उपलब्धि होती है और जिसकी चैतन्यता से इन्द्रियां भी चैतन्य होकर अपने कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ होती हैं, तथा जिसके शिरोभाग में अखण्ड भूमण्डल एक सर्षप के समान विद्यमान है ऐसे भगवान् श्रीशेष जी को अनेकशः प्रणाम कर उन्हींके अवतार रत्नोंके कीर्ति कलाप से समलंकृत इस लक्ष्मण स्तोत्र के विषय का परिमित शब्दों में दिग्दर्शन मात्र कराकर पाठकों से इसे ग्रहण करने का सादर अनुरोध करूँगा।

इस स्तोत्र के रचयिता हैं पूज्यपाद राजगुरु श्री १०८ श्री स्वामीजी महाराज लक्ष्मण बाग, आपकी विद्वत्ता

तथा काव्य निर्माण शक्ति से विज्ञगण स्वयं परिचित हैं इसका विशेष परिचय देना पुनरुक्तिसा प्रतीत होता है केवल यहाँ इतनाही कह देना पर्य्याप्त है कि आपकी कविता ठीक उसी प्रकार की होती है जैसी कि प्राचीन लब्ध प्रतिष्ठ कवियों की होती थी, इसमें सन्देह नहीं कि आपके पद्य अनेकार्थ गम्भीर एवञ्च अत्यन्तही श्रुतिसुखावह होते हैं आप सम्बत् १९८० में जब लक्ष्मणबागके सिंहासन को अलंकृत किए उसी समय इन पद्यों द्वारा श्री लक्ष्मण जी की स्तुति कर इसे लक्ष्मण स्तोत्र,के नामसे प्रचलित किए, इस स्तोत्र में श्री विष्णु भगवान् के दशावतारोंके ऐसे उनके प्रधान विभूति श्री शेषजी के भी पाँच अवतार होने का प्रमाण पूर्वक उल्लेख है, शेषजी के अवतार यद्यपि., प्रथमोऽनन्त रूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा तृतीयो वलरामश्च कलौरामानुजो मुनिः॥ इस पद्यके अनुसार चारही कहे गएहैं किन्तु, अनन्तोहिभूत्वा महाभाष्यकारः प्रबुद्धं चकार त्रयी शब्दजालम्-पुनस्सोय मागत्यमद्भाष्यकारः प्रबुद्धं चकार श्रुतेरर्थमूलम्, इस श्लोक से स्पष्ट ज्ञात होता है कि पतञ्जलि भी श्री शेषजीके ही अवतारोंमें से हैं अतएव शेष जीके पाँच अवतार मानने में कोई आपत्ति दृष्टि पथमें नहीं आती, एवञ्च इन अवतारों द्वारा लोक का जो उपकार हुआ तथा जो सद्व्यस्थाएँ स्थापित की गईं उन्हीं का संक्षिप्त

तया वर्णन अथच लोकमें विशेष रूपेण विस्तृत कुतर्कों के परिहार का हृद्यङ्गम उद्योग इस स्तोत्र में किया गया है,

निवासशय्यासन,पादुकांशुकोपधानवर्षातपवारणादिभिः
शरीर भेदै स्तव शेषतां गतैर्यथोचितं शेष इतीर्य्यतेजनैः,

(आलवन्दार ४३ श्लोक) इसके अनुसार श्री शेषजी श्री मन्नारायण की प्रधान विभूति होनेके कारण आदिदेव हैं, अतएव इनका वर्णन इस स्तोत्रमें श्री मन्नारायणके अत्यन्त अभिमत कोटि में निविष्ट व सर्व कार्य निर्वाहक मान कर किया जाना वास्तव में अतीव श्रद्धास्पद है, विद्या धराधिराज चित्र केतु ने भी षष्ठ स्कन्ध भागवत में श्रीशेष जी की स्तुति करते हुए कहा है, "तवविभवः खलुभगवन् जगदुदयस्थिति लयादीनि विश्वसृजस्तेंऽशांशा स्तत्रमृषा स्पर्द्धन्ते पृथगभिमत्या, अर्थात् आपके द्वारा संसारका निर्माण, पालन व संहार होता है और आपही के अंशांश ब्रम्हादिक भी हैं, इत्यादि बचनोंको देखते हुए इस स्तोत्र के अन्तर्गत विषयोंका विवेचन निर्विवादतः प्रमाण पूर्वक है,

सम्प्रति लोक में इस प्रकारके पुस्तकों की आवश्यकता भी कम नहीं क्योंकि, अनन्त पारं किल शब्द शास्त्रं स्वल्पं तथायुर्वहवश्चविघ्नाः सारं ततोग्राह्य मपास्य फल्गु हन्सैर्यथात्तीर मिवाम्बुमध्यात्, इत्यादि पद्योंके निरवद्य उक्तियोंको बिचारते हुए विषयको विस्तृत कर बड़ी २

पुस्तकोंके निर्माण करने की अपेक्षा विशाल विषय को सूक्ष्म तथा समझा देना नितरांचमत्कृतिवह है, इन्ही बातोंकी पूर्णगवेषणासे, पूज्य पाद श्री स्वामी जी महाराज, समग्र शास्त्रों का तात्विक विषय इस एक छोटे से स्तोत्र रत्नमें रखते हुए विशेष सफलता के भागी हुए हैं, इस हेतु कम पढ़े लिखे जनसमुदाय में भी इसका असर पड़ना सर्वथा अनिवार्य है, सम्भवतः इसके प्रत्येक विषय प्रकाश रूपमेंही परिणत कर लिखे गएहैं कहीं२ वेदान्त का विषय सरलता पर ध्यान रखते हुए भी गहन हो गया है एतदर्थ इसमें साधारण संस्कृत टीका व भाषा टीका का भी समावेश कर, साथही साथ सँस्कृत टीका के अन्त में तात्पर्य विवरण भी रख दिया गया है, इस स्तोत्र की रचनात्मकशैली यद्यपि अनेकार्थ सम्पन्न है किन्तु अन्य अर्थ दुरूह होनेके कारण उपरोक्त टीकाओं में नहीं लिखे जा सके, केवल उन्हीं अर्थोंका लिखा जाना अधिक उपयुक्त माना गया जोकि सर्व साधारणके समझने योग्य थे अन्य अर्थ विशेषज्ञोंकी विशिष्टता पर निर्भर हैं, टीकाकारों ने तो जो कुछ लिखा है वह सर्व साधारण जनताके लिए यदि इन टीका ओं से विशिष्ट विद्वानों को भी कुछ सन्तोष हुवा तो वे

अपने प्रयास को और भी अधिक सफल समझेंगे, अस्तु अब में विशेष न लिख कर भगवद्भक्तोंसे यही अन्तिम निवेदन करूँगा कि इस स्तोत्रके अन्तर्गत पीयूष मय उपदेशोंका तथा भक्ति वर्द्धक विषयों का निरन्तर मनन करते हुए स्तोत्र के अमूल्य जन्मको सफल करनेको अवश्य अनुकम्पा करें,

मैं प्रथम इस स्तोत्रके निर्माणका हेतु संक्षिप्तमें यद्यपि बतला चुका हूं विशेष हेतु लिखने का इस छोटी सी भूमिका में स्थान भी नहीं। तथापि सूक्ष्म रूपेण उस हेतु का भी मूल भूत, एक यही हेतु इस स्तोत्र का उपजीवक है जिसे यहां लिख देना अत्यावश्यक है।

पञ्चम वेद महाभारत मं भीष्मपितामह ने कहा है "एषमे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमोमतः, यद् भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवै रर्चेन्नरः सदा" इत्यादि अर्थात् भक्ति पूर्वक स्तोत्रों द्वारा भगवान् की अर्चना करना यही एक मात्र मनुष्य का परम धर्म है, चाहे स्तोत्र नवीन:निर्मित हों या प्राचीन इसका कोई नियम नहीं, केवल स्तोत्र भगवद्विभूतिके वर्णन करने वाले होने चाहिये। इसी हेतु श्रीस्वामी जी महाराज इस स्तोत्र के द्वारा श्री लक्ष्मणजी की स्तुति कर मानव समाज को उक्त धर्मसे विशेष परिचित किए हैं।

यद्यपि भगवद्विभूतिके वर्णन करने वाले संप्रति

अनेक स्तोत्र तथा बड़े २ ग्रन्थ हैं जिनसे संसारका विशेष उपकार हो रहा है परन्तु भगवद्विभूतियों में ही सबसे प्रधान विभूति श्री लक्ष्मण जी के नामसे कोई पृथक् स्तोत्र नहीं था जिनकी अनन्त सत्ता मैं पहले वर्णित कर चुका हूं अतः इस अभाव की पूर्ति इस वेदान्तगर्भ स्तोत्र से भली भाँति की गई है।

इस स्तोत्र का निर्माण भी रामनवमी के दिन हुआ है, उस दिन इस स्तोत्र के निर्माण का हेतु यही है कि जिस देश व जिस काल में भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं उसी देश उसी काल में प्रायः भगवन्महत्व प्रकाशक वेदशास्त्र महात्मादि भी प्रकट होते हैं यहबात इसश्लोक द्वारा सर्वथा प्रमाणित है, "वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे, वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना । इति । इतनाही नहीं किन्तु यह समुचित सुअवसर देख कर लोकमें प्रसिद्ध मार्तण्ड यह शब्द भी निजस्थान से दूर होने के कारण जंगल गुहा गृहादिकोंमें पर्याप्त प्रकाश न पहुंचा सका अतएव वह भी उसी दिन वान्धवनरेशके पुत्ररत्न को समलंकृत कर अपने अर्थ को यथोचित चरितार्थ किया,÷ अस्तु।

अवरहो इसस्तोत्रके प्रकाशनकी बात-उसकी भी उपयोगिता श्रीलक्ष्मणजी की कृपासे समुचित रूपमेंही हुई,

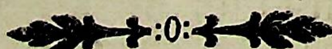
टि० ÷ एवञ्च अनुमान द्वारा ज्ञात होने वाला वाच्यवाचक का साहचर्य नियम भी प्रत्यक्ष रूपमें परिणत हुआ —

उचित भी यहीथा क्योंकि जगत्का प्रकाश यथा सूर्य्य देवही से हुआ करता है उसी प्रकार तीर्थगुरुदेवताधर्म ग्रन्थादिकोंका प्रकाशभी श्रीमानों केही द्वारा होना पाया जाता है, एतन्मूलकही यह एक पद्यभीहै "धर्मस्य मूलं राजानः,, इति, उपरोक्ततीर्थादिकों के प्रकाश से लोक की उसओर प्रवृत्ति हुई तदनन्तर धर्म की बृद्धि होना स्वाभाविक है अतएव धर्म के मूल राजा ही हुए। प्राचीन काल के इतिहासों से भी यहबात निर्विवादतः सिद्ध है कि उपरोक्त तीर्थादिकोंका प्रकाशन महाराजों के ही द्वारा हुआ है जैसेकि गंगादिक तीर्थों का भगीरथादिकों से, गुरुदेवतादिकोंका दशरथादिकों से, एवञ्च भागवतादि धर्म ग्रन्थों का परीक्षितादिकों से यही कारण है कि आजभी इसभूलतमे ज्योंकात्यों उनका अस्तित्व बना हुआ है, अन्यथा लोक की प्रवृत्तिइसओर होना अतिकठिनथा लिखाभीहै,, यद्यदाचरति श्रेष्ठ स्तत्तदेवेतरो जनः, इत्यादि। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिन काय्र्यों का उपक्रम श्रेष्टजनों द्वारा हुआ करताहै उन्हीं काय्र्यों की लोक में अनन्त काल तक सत्ता रहती है और लोक उसीका अनुगामी भी होताहै। एवञ्च इसस्तोत्रके प्रकाशक यदि श्रीवैष्णव समाजभूषण क्षत्रियकुलशिरोमणि श्रीमान् रीवाँ नरनाथ हुएहैं तो इसस्तोत्रका जन्म सफल हुआ और इसकी सत्ता चिरव्यापिनी होकर लोकमे अवश्य

सत्कृतहोगी वस्तुतः किसीभी वस्तु का प्रकाशन यदि होता है तो केवल तेजस्वियोंके ही द्वारा, घटपटादि पदार्थों का प्रकाशन यदि होता है तो केवल सूर्य्य या कि दीपक से, अन्यथा प्रकाशन इनका सर्वथा असम्भव है,

यद्यपि प्रकाश्य प्रकाशक के समानाधिकरण में तेजस्वियोंरिवके भांति विशेष अन्तर है तथापि इस स्तोत्रके प्रकाशकत्व ग्रहण करनेमें, नराणाञ्चनराधिपः, इस वाक्यसे भगवद्विभूतिका प्रकाशन करना श्रीमान् के भी स्वयं प्रकाश का उत्कर्षाधायक है, अब मैं विशेष न लिख कर हृदय से श्रीमान् की शुभकामना करता हूँ और श्रीलक्ष्मणजी से प्रार्थना करता हूँ कि श्रीमान् की रुचि इसी प्रकार सर्वदा धर्म कार्योंकी ओर रखते हुए आपको चिरायु प्रदान करें।

	बिनीत
भाद्र शु. ५ सोमवार सं. १९८२	साहित्यभूषण,
लक्ष्मण बाग--रीवां-	गया प्रसाद शर्मा शास्त्री
	(अध्यापक)
	श्रीवैष्णव सं. पाठशाला



(अति संक्षिप्तलक्ष्मणार्यगुरुपरम्परा)

भारद्वाजकुलारविन्दतरणिं सौशील्यवारां निधिं,
श्रीमच्छ्रीशपदारविन्दयुगले सुप्रेमसीमावधिम् ॥

श्रीमद्वीरजना, र्दनार्यचरणेष्वत्यन्तसक्तंसदा,
श्रीमच्छ्रीबदरी पन्न सुगुरुं वन्दे दयैकार्णवम् ॥१॥
नारायणस्य,वरकिंकरभावजुष्टं,
लक्ष्मीप्रपन्नकरुणार्द्र कटाक्षलक्ष्यम् ॥
श्रीमन्मुकुन्दपदपंकजचञ्चरीकं,
श्रीमज्जनार्दनगुरुं सततं भजामि ॥ २ ॥
श्रीमन्मुकुन्दपदपंकजभृंगराजं,
वेदान्तवेद्यपुरुषेऽर्पितदास्यभावम् ॥
दीनात्मनां करुणयार्तिहरं दयालुं,
लक्ष्मीप्रपन्नमुनिवर्य्यं महं प्रपद्ये ॥ ३ ॥
श्रीराजगोपाल पदाब्जभृंग,
मवाप्त शास्त्रार्थ विशेष तत्वम् ॥
कात्यायनार्यान्वयपूर्णचन्द्रं,
श्रीमन्मुकुन्दार्य महं भजामि ॥ ४ ॥

श्रीमते रामानुजायनमः

श्री लक्ष्मण स्तोत्रम्

(अनेनानन्तशब्दार्थमाह)

(१)

श्रियोभर्तुस्तल्पं क्षितिभरणकल्पं फणिवरं ।
स्वनिर्वाच्यश्रीशाद्भुतरुचिकथानामभजनैः ॥
उदीर्णसीमानं दृढनयन संज्ञास्यरसनैः ।
प्रपद्येश्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥

(श्रीहयबदन परब्रह्मणेनमः)

हयाननं वागधिपंप्रणम्य–गुरुञ्चजाड्यान्धसहस्ररश्मिम् ।
टीकामनन्तस्यमुदेऽस्यकुर्मः शब्दार्थसन्दर्भ प्रकाशिकाख्याम् ॥

(अथान्वयः) श्रियोभर्तुःतल्पं, क्षितिभरणकल्पं, दृढनयन संज्ञास्यरसनैः स्वनिर्वाच्यश्रीशाद्भुतरुचिकथानामभजनैः, उदीर्णसीमानं, फणिवरं कृपणशरणं, श्रीमन्तं, लक्ष्मणमुनिं (अहं) प्रपद्ये,

(व्याख्या) समाप्तिकामो मंगलमाचरेदितिबचनात् प्रथम तश्चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्न परिसमाप्त्यर्थं, मंगलमा-चरन्तिग्रन्थकर्त्तारस्तदत्रमहामहिमशालिनो लक्ष्मणराम सिंहासनाधीश्वराः श्रीपूज्यस्वामिवर्य्याः, लक्ष्मणस्तोत्ररत्नो-पक्रमेलक्ष्मणस्यानन्तत्वसूचनवस्तुना,वस्तुनिर्देशात्मकं मंगलं निवध्नन्त आहुःश्रियो भर्तुरिति, श्रियोलक्ष्म्याः, भर्तुः

स्वामिनः, (श्रीमन्नारायणस्येत्यर्थः) तल्पशय्याम्, (तल्पं-शय्याट्टदारेष्वितिकोषः) क्षित्याधरित्र्याः भरणेधारणेकल्पः समर्थः, (धराधरित्रीधरणीक्षोणिर्ज्याकाश्यपी क्षितिरितिकोषः) कल्पइत्यत्रकॢपूसामर्थ्ये इतिधातोरच्प्रत्ययः—दृढानिनयनानि संज्ञाश्चास्यानिरसनायेषु तैस्तथोक्तैःदृढपौरुष नेत्राभिधानमुख-जिह्वैः, (दृढःस्थूलबलयोरिति निपातनाद्दृढइति, सुष्ठु, अनिर्वाच्यानि, इयत्तयावक्तुमशक्यानि, श्रीशस्य, लक्ष्मीकान्तस्य, यानि, अद्भुतरुचिकथानामानि विचित्रशोभागुणानुवादा-भिधानानि, तेषांभजनानिसेवनानि तैस्तथोक्तैः—उदीर्णं असीमायस्यतं, अतिशयितानवधिकम् फणिवरंशेषम्—कृपणा-नांशरणं, दीनरक्षकम्, श्रीमन्तंलक्ष्मिसम्पन्नम्, (लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नइतिरामायणोक्तेः) लक्ष्मणमुनिम्, अहं, प्रपद्ये प्रपन्नोऽस्मीत्यनेन पञ्चमोपायनिष्ठापिप्रदर्श्यते—

"सवैमनःकृष्णपदारविन्दयोर्वचान्सिवैकुण्ठगुणानुवर्णने
करौहरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिंचकाराच्युतसत्कथोदये"

इत्यादिवचनानुसारेणायं स्वकीयेन्द्रियाणां मुख्यकार्य्यं भग-वदंगप्रत्यंग सेवनयैवसफलीकरोति क्षणार्द्धमपितेषां समयं निरर्थकंनयापयतीतिध्वनिः— अस्मिन्स्तोत्रे शिखरिणी वृत्तम् तल्लक्षणं,रसैरुद्रै श्छिन्नायमनसभलागःशिखरिणीति

(ता.)तत्रभवन्तःश्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्योभय वेदान्ताचार्याः शमदमाद्यनन्तकल्याणगुणसम्पन्नाः, लक्ष्मणारामबिराजमान

श्रीराजगुरुस्थानाधिपत्यविभूषिताः, श्री १०८ स्वामिनोऽनेन श्रीलक्ष्मणस्तोत्रेण गुडजिह्विकान्यायेनाति दुरूहानपि शास्त्रसारार्थान् कान्तासम्मिततया सहृदयहृदयावर्जकैः पद्यैः समुपदिशन्ति, अत्रायमाक्षेपः समुन्मिषति "सतीषु अपरिच्छेद्यप्रभावपरिबृंहितासु देवतासु सति च सर्वफलप्रदे नानाविधावतार भूमिका परिग्रहेणब्रह्मकोटम्" अमन्दानन्दसन्दोह मातन्वति भगवति श्रीमन्नारायणे दाशमासिक गर्भभरालसायाः प्रजावत्या जानक्या निर्मानुषे वने विसर्जनेन प्रकटितविश्वग्विततकारणद्रोहनैघृण्यप्रथस्य लक्ष्मणस्येयंस्तुतिः सतीषु प्रभूतशुभगसलिलासु स्रोतस्विनीषु मृग तृष्णिकानुधावनमनुहरतीति " तमेतम नधिगतयथार्थ्यानां कूपकूर्मसधर्मणाँ मर्त्यधर्मणाम विचारित रमणीयमाक्षेपाङ्कुरं वर्णनव्याजेन प्रथमतः समुन्मीलयन्ति (श्रियोभतु स्तत्पमित्यादिना---अत्रायमभिप्रायिकः परिहारक्रमः " इयं हिस्तुतिर्न त्रिवर्गा काङ्क्षिभिः प्रणीयते येन संसारमरुपथ पान्थानां विश्रमस्थानाय मानं स्वर्गादिकंवितरन्तोदेवाः बद्धाञ्जलिपुटं स्तूयेरन् अपि तर्हि (परम पुरुष चरण कमलैकान्त मनोभि स्तत्प्रसादसंपत्स्यमाना पवर्गै निरीहै वीत रागोत्तंसैः केवल भगवत्प्रीतये क्रियते इति प्रस्पष्टमिदंप्रणेतृ स्वभावाभिज्ञानाम्)

तत्रचैक शृङ्खला प्रग्रथित पादद्वर सन्निभेषु समानबन्ध

निष्टास्यन्देषु देवेषु वन्धविमोक्षाभ्यर्थनाया, नास्त्येवावकाशो येन ते तोष्टूयेरन्‌एतेषाँ संसारित्वं मोक्षप्रदानानधिकारो भगवत एवमोचयितृत्वंच,, आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्ता जगदन्त र्व्यवस्थिताः प्राणिनः कर्म जनित संसार वश वर्तिनः, पशवः पाशिताः पूर्वं परमेणस्वलीलया [तेनैव मोचनीयास्ते नान्यै र्मोचयितुं क्षमाः, इति प्रस्पष्टं प्रत्यपादिषत, अतोदेवा दीनां स्तुता वप्रवृत्तिः प्रेक्षावता मनुरूपेण सिद्धम्, यद्यपि नाना विधा भगवदवताराः किंन स्तूयते, इतिवल्गितं तदप्यर्द्धहृदयंगमंयतः "आराधनानाँ सर्वेषाँ विष्णो राराधनं परम् ॥ मम मद्भक्तभक्तेषु प्रीति रभ्यधिका भवेत् ॥ सिद्धिर्भवतिवानेति संशयो ऽच्युतसेविनाम् ॥ नसंशयोऽत्र तद्भक्तपरिचर्य्यारतात्मनाम्" ॥ इत्यादि बचनैः भगवद्विषयेभ्यः प्रीतिसाधनेभ्यो भागवतोद्दे श्यकानां प्रीतिसाधनानां राजकुमारोपलालनस्य राज्ञइव भगवतोऽतिशयितप्रसादोत्तमभक्त्या परम भागवतः "निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातपवारणादिभिः ॥ शरीरभेदैस्तव शेषतां गतैर्यथोचितं शेष इतीर्य्यतेजनैः" इति यामुनाचार्य्यानुगृहीतरीत्या सर्वकालसर्वदेशसर्वावस्थोचित सर्वविधकैङ्कर्य्यकरणेन शेषतैकस्वरूपनिरूपक धर्म्मणः शेषस्यावतारभूतः सर्वत्र सर्वदाच छायावच्चक्रवर्तिकुमार मनुवर्तमान स्तत्कैङ्कर्यैकरसिकः श्रीवालस्वामी लक्ष्मणः

स्तूयत इति सारासारविवेकिनां हृदयं गमयेतत् "यश्चाज्ञोजन्तु रनीशोऽय मात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वर प्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेववा" ॥ इति बचनानुसारेण भगवदाज्ञानुपालन शास्त्रार्थ माविष्कुर्वाणे सीतायावने,,त्यागेन परिदूयमाने परम कारुणिके श्रीलक्ष्मणे दोषापादनं तच्च स्वशरीरे गलद्भिर्जम्वा लैर्गगनतलालेप मनुहरति । अतः श्रीलक्ष्मणस्तोत्रारम्भः साधीयानिति संसिद्धम् । लोके निष्करुणस्य शक्तस्यवा कारुणिकस्याशक्तस्यवा विषये क्रियमाण प्रपत्तिर्मोघा भवतीति सर्वं संम्प्रतिपन्नम् । अतो लक्ष्मणस्य कारुणिकत्व शक्तत्वप्रतिपादनेन प्रपत्तेरमोघत्वं व्यञ्जयति, क्षितिभरणकल्पमिति, अनेन चतुर्द्दशभुवनधारकस्य शक्तिः सूचिता धारणस्यच करुणैकनिबन्धनत्वात्कारुणिकत्वं व्यञ्जितम् । प्रियोभर्तु स्तल्प मित्यनेन भगवदन्तरङ्गत्वाद्भगवताप्यविहतसङ्कल्पत्वं व्यज्यते । अपरिमितेन वलेन सहस्रशीर्षै रसंख्यसंज्ञाभि रपरिमितरशनाभिश्चात्यद्भुतदिव्यमंगलविग्रहसेवाभगवत्कथानुकथनभगवन्नामसंकीर्तनभगवद्भजनादिपरिवोहशतभरितपरब्रह्मानुभवप्रतिपादनेन„ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्„ इत्यभिहितस्यभगवतः परमसाम्यप्रतिपादनेन मुक्तिः„ निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति, भोगमात्रलिङ्गाच्चेति श्रुतिसूत्रोक्तरीत्या परमभोगसाम्यरूपैवेतिशास्त्रसारार्थो ध्वन्यते । एतेन, ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति„ इत्यन्यपरश्रुतिसकल

बलेन निर्विशेषब्रह्मैक्यापत्तिरेव मुक्तिरिति जल्पन्तः प्रच्छन्न-बौद्धा निरासिषत। एतादृशमुक्तेरुपायभूतां सुकरामङ्गान्तर-निरपेक्षां प्रपत्तिं स्वानुष्ठानव्याजेन लोकानां प्रदर्शयन्ति प्रपद्ये इत्यादिना। तत्रानुकूलवाक्प्रवृत्तेरनुकूलमनः प्रवृत्ति-पूर्वकत्वादानुकूल्यसङ्कल्पः प्रातिकूल्य वर्जनञ्च ग्रन्थप्रणयनेनैव प्रादर्शिषाताम्। कृपणमध्ये स्वस्यान्तर्भावात्कार्पण्य-मपिस्फुटीकृतम्। प्रपत्त्यनुष्ठानेनैव तन्नान्तरीयकामहाविश्वासगोप्तृत्ववरणात्मनिक्षेपा असूचिषत। अतः,, आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्॥ रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वं वरणं तथा॥ आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिरित्युक्तरीत्या पुष्कलाप्रपत्ति रनुष्ठिता सूच्यत इति सर्वमवदातम्॥ १॥

(भाषार्थ)

श्रीमन्नारायण के शय्यारूप पृथ्वी के धारण करनेमें अत्यन्त बलपूर्वक संलग्न हैं नेत्र संज्ञामुख और जिह्वा जिनमें ऐसे अनिर्वाच्य श्रीपति की शोभा कथा नाम के भजनों करके बढ़ा हुआ (निरवधिक) है महात्म्य जिनका ऐसे फणिवर दीनों के रक्षक श्रीमान् श्रीलक्ष्मण जीके शरण हैं।

(भावार्थ)

सदैव जिन श्रीलक्ष्मणजी की इन्द्रियाँ भगवानके गुण वर्णन करने में संलग्न रहती हैं अतः तन्मय होनेके कारणसे

इनका महात्म्य असीम है और अनन्त कहे जाते हैं ।

(श्रीभगवदाज्ञया सृष्ट्युपकरणत्वमप्यस्यैव : सूच्यतेऽनेन)

अचित्साम्यान् हृद्यान् करणविकलाँश्चेतन मणीन् ।
दयाक्लिन्नो दृष्ट्वा व्यरमयत निद्रां भगवतः ॥
रमोद्यानं प्रोल्लासयति शुभलोकत्रयतरुं ।
प्रपद्ये श्रीमन्तं, कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥ २ ॥

(अन्वयः) दयाक्लिन्नः, अचित्साम्यान्, करणविकलान् हृद्यान्, चेतन मणीन्, दृष्ट्वा (यः)भगवतः,निद्राँ,व्यरमयत, (यश्च) शुभलोकत्रयतरुं, रमोद्यानं, प्रोल्लासयति, तं श्री लक्ष्मणमुनि प्रपद्ये–

(व्याख्या) दयया क्लिन्नो दयाक्लिन्नः करुणार्द्रः, अचित्सा म्यान् जडसदृशान्, करणैर्विकलान् करणविकलान्, इन्द्रिय व्याकुलान्, (करणंसाधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपीतिकोषः) हृद्यान्कृपायोग्यान्, कौस्तुभव्यपदेशेनाभिधातुमुचितानिति यावत्, उक्तञ्च,कौस्तुभव्यपदेशेनह्यात्मज्योतिर्बिभर्त्यज, इत्यादि–चेतनाएवमणयश्चेतनमणयस्तान् तथोक्तान् प्राणि-रत्नानि, (प्राणीतुचेतनोजन्मीत्यमरः) दृष्ट्वावलोक्य, भगवतः श्रीमन्नारायस्य, निद्रां स्वापम्, (स्यान्निद्राशयनं स्वापइतिकोषः) यः श्री लक्ष्मणः, व्यरमयत न्यवर्तयत,

कार्य्यं बुद्ध्वाप्रभुंप्रबोधितवानित्य तस्य स्वामि कार्य्यानुष्टाने नहीङ्गितज्ञोऽवसरेऽवसीदतीत्यादयुक्तेरनाज्ञप्तोऽपि समयोचित नैरन्तर्य्यासक्तिः सूच्यते—यश्च, शुभा ये लोका भुवनानि, तेषांत्रयं शुभलोकत्रयं तदेव तरवो वृक्षाः यस्मिन्तन्तथोक्तम्, रमाया उद्यानं रमोद्यानं कमलोपवनम्, उल्लासयत्यभि वर्द्धयतेतं श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये-तरुरूपेणात्र प्रपञ्चास्याभिधानं कृत मित्यवगन्तव्यम्—

त्रिभुवनस्य तरुरूपेण वर्णने प्रमाणमपि विज्ञेयंयथा, एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा सप्त त्वगष्ट विटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगोह्यादिवृक्ष

(ता.)अथश्रीलक्ष्मणस्यलोकोत्तरकारुण्यंस्वार्थनिरपेक्षपरार्थप्रवृत्तिं तद्द्वारा शेषिदम्पत्योरानन्दनिवर्तकत्वञ्च व्यञ्जयन्तो जगत्सृष्ट्युपयोगित्वं शब्दतोऽभिदधतेऽचित्साम्यानित्यादिना अत्रायमर्थोऽभिप्रेतः । यथा लोके राजानः पुत्रादीनामुत्तरोत्तराभिवृद्ध्यर्थं तद्द्वारा स्वयञ्चानन्दमनुभवितुं परिजनपरिच्छदादिकं वितरन्ति तदा दायपुत्राः यद्यतिगर्हितेषु विषयेषु प्रवर्तमानाः साधुजनावहिष्कृता वर्तेरन्, तर्हि राजानस्तेषां दुर्वृत्तादिकमसृष्यमाणास्तेभ्यः प्रत्तमुपकरणादिकमवस्कन्द्यगृहीत्वा तान्प्राकृतनिर्विशेषान्विदधते अनन्तरञ्च सहजपुत्रप्रेम्णा तेषां दुर्वृत्ताभिसन्धिनिवृत्तास्यादितिमत्वा पुनरपि परिजन परिच्छदादिकमतिसृजन्ति तथैव सप्तलोकी गृहस्थः श्रीमन्नाराय-

णोऽपि सर्वेषांजीवानां स्वाराधनेन मुक्त्युपलब्धये करणकलेव-
रादिकं दिशतिअनन्तरञ्चेतनास्तत्सहाय्येन निषिद्धेषुप्रवर्तन्ते
ततोभगवानपितेषांनिषिद्धकर्मप्रवणतामसहमानोनिषिद्धवि
षयकदुर्वासनाविनिवृत्तयेप्रतिसर्गकालेकरणकलेवरादिकं संहृत्य
तानचिद्विशिष्टान्स्थापयित्वायोग निद्रां सेवते ।
तदानीं पर्य्यङ्कभावेन परिचरञ्छ्रीमानादिशेषो
भगवतो निद्रां विनिवर्त्य,, नकश्चिन्नापराध्यति, इति भग-
वतोनिग्रहं श्लथयित्वा सर्वेषामपिजीवानां करणकलेवरादिकं
दापयतीतिसंवर्तवार्ताभिज्ञानां विपश्चितामपश्चिमोनिश्चयः।
अतोलोकोत्तरकृपाकूपारः श्रीशेषः प्रलयकाले करणविकला
नामचिद्विशेषाणामतिशोचनीयानां धर्मभूतज्ञानेन बाह्यार्थप्र-
काशनेन प्रभया बाह्यार्थ प्रकाशकमणिसाम्यभाव हताञ्जना-
नादर्शनेन दयाक्लिन्नः सन्भगवद्योग निद्राविनिवर्तनपूर्वकं
करणकलेवरादिप्रदापनेशेषदम्पत्योर्लीलारामायमाणां लोकत्रय
तरुभरितां लीलाविभूतिं प्रोल्लासयतीति शास्त्रसारा-
र्थाविष्करणेन सर्वैरपिजीवैः कृतज्ञताप्रकाशनपूर्वकमादि शेषा-
वतारः श्रीलक्ष्मणः स्तोतुंयुज्यतइति व्यञ्जयन्तस्तद्वारा ग्रन्थ-
प्रारम्भमपिदृढयन्तः पूर्वोक्तानितरसुलभान्गुणगणानपि
प्रकाशयन्तीतिसिद्धम् ॥ २ ॥

(भाषार्थ जो (लक्ष्मणजी) जड़ सदृश इन्द्रियोंसे रहित प्रेम
योग्य प्राणिरत्नोंको देखकर भगवान्‌को निद्रासे जगातेहैं।

और लोक त्रय रूपी वृक्षवाले श्रीलक्ष्मीजीके उद्यान को आनन्दित (पुष्प फलादि युक्त) करतेहैं उन श्रीमान् दीनों के रक्षक श्रीलक्ष्मणजीके शरणमें प्राप्तहैं ।

भावार्थ—श्रीलक्ष्मणजी प्रलयके अन्तमे जड़ तुल्य इन्द्रिय रहित प्राणियों को देखकर भगवान् को जगातेहैं और सृष्ठिका निर्माण कराते हैं ।

(अनेन भगवदाज्ञया संहारकर्तृत्वमप्यस्यैवसूच्यते,)

विभोरिच्छांबुद्ध्वा निजहृदयशय्योत्सुकधियो—
विराजं संहर्तुं स्थिरचर विचित्राकृतिगिरम् ॥
मुखात्कोटीन् रुद्रान्नजनयतविद्या बिलसितान्—
प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपणशरणंलक्ष्मण मुनिम् ॥३॥

(अन्वयः) निजहृदयशय्योत्सुकधियः, विभोः, इच्छाँ, बुद्ध्वा, स्थिरचरबिचित्राकृतिगिरम्, बिराजं, संहर्तुं, (यः) विद्याबिलसितान्, कोटीन्, रुद्रान्, मुखात्, अजनयत्, तं, श्रीलक्ष्मण, मुनिम् प्रपद्ये,—

(व्याख्या) निजंस्वकीयं यद्हृदयं वक्षस्तदेव शय्याशयनीयं तस्यामुत्सुका सोत्कण्ठा धीर्मेधायस्यतस्य तथोक्तस्य, (शय्यायां शयनीयवत्, धीर्धारणा बतीमेधा चेत्यमरः) बिभोः श्रीमन्नारायणस्य, इच्छामभिप्रायम्, बुद्ध्वा ज्ञात्वा, स्थिराःस्थावराश्चराजंगमास्तेषां बिचित्रानानाप्रकारा आकृतय आकारा गिरोवाचश्च यस्मिन्तं तथोक्तम्, (गीर्वाग्

वाणीसरस्वतीतिकोषः) विराजंविराट्रूपम्,विपूर्वकाद्राजृधा-तोः क्विप्प्रत्यये विराजमिति-संहर्तुं स्वस्मिन्निलीनीकर्तुं, यःश्रीलक्ष्मणः, विद्ययाविलसितास्तान् विद्याविलसितान् विज्ञान विभूषितान्, कोटीनसंख्यान्, रुद्रान् शंकरान्, मुखा-दास्यात्, (वक्त्रास्येवदनंतुण्ड माननंलपनं मुखमितिकोषः) अजनयदुत्पादयामास, तंश्रीलक्ष्मणमुनिम्प्रपद्ये-

मुखात्कोटिरुद्रोत्पादनेप्रमाणं भागवते पञ्चमस्कन्धे २५ अ० ३ गद्यंतथाच, यस्यहवाइदं कालेनोपसंजिहीर्षतोऽमर्षविरचित रुचिरभ्रमद्भ्रुवोरन्तरेणसांकर्षणो नामरुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्ष त्रिशिखंशूल मुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत्-इति-

(अपरमपि) यस्याद्यआसीद्गुणविग्रहोमहान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजःकिल-यत्सम्भवोऽहं त्रिवृतास्वतेजसा वैकारिकंता मसमिन्द्रियंसृजे ॥ २२ ॥

एतेवयंयस्यवशेमहात्मनः स्थिताः (शकुन्ता)इवसूत्रयन्त्रिताः-महानहंवैकृततामसेन्द्रियाः सृजामसर्वेयदनुग्रहादिदम् ॥२३॥

(पञ्चमस्कन्धे) १७ अध्याय, सदाशिवेनैवस्वस्यचतुर्मुखादी नाञ्च संकर्षणात उत्पत्तिस्तत्पराधीनताच द्वाभ्यामुपरितना भ्यांश्लोकाभ्यांस्वमुखादेवंवर्णितेतिकिमन्यत्प्रमाणमावश्यकमिति

(ता०) पूर्वश्लोकोक्तरीत्या सर्वेषांकरणकलेवरादिकेप्रत्यये-पितेषांतैरेव निषिद्धप्रवर्तनमवलोक्य तद्वे तुदुर्वासनानिवृत्तये सञ्जिहीर्षो भगवतः साहाय्याय कल्पान्तरुद्राणांसर्जनेन

संहारोपयोगित्वं व्यञ्जयन्ति विभोरिति । एकस्यैव नामरूप विभागानर्हसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टस्य तदैक्षत 'बहुस्यांप्रजायेये' त्युक्तरीत्या विचित्रनामरूपविभागार्हस्थूलचिदचिद्विशिष्टरूपेण परिणामस्यैव सृष्टिरूपत्वं तस्यैवस्थूलचिदचिद्विशिष्टस्य ब्रह्मणः पूर्वोक्तसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टदशापत्तेरेव संहारत्वंचेति शास्त्रार्थः 'स्थिरचरविचित्राकृतिगिरम्' विराजंसंहर्तुमित्यनेन सूच्यते । निजहृदयशय्योत्सुकधिय इत्यनेनजीवानां दुर्वासना निवृत्तिपर्य्यन्तंभगवतो योगनिद्राभिलाषः कथ्यते । 'विभोरिच्छांबुद्ध्वा' इत्येनेन विभोरादेशात्प्रागेवेच्छानुमानेनैव रुद्रसृष्टिवचनादुत्तमश्चिन्तितंकुर्य्यादित्यभिहितोत्तमदासवृत्तिः सूच्यते। 'मुखात्कोटीर्रुद्रानजनयतेत्यनेन । शेषस्यसहस्रवदनत्वात्कल्पान्तकालेसृष्टव्यानाँरुद्राणांझटितिसृष्टौलोकोत्तरं सामर्थ्य मस्तीति ध्वन्यते । एवं रुद्रसृष्टेरपि जीवानां दुर्वासनानिवृत्यर्थत्वेन संहारस्यापि करुणामूलत्वं व्यञ्जितम् एवञ्च परमकारुणिकत्वं संहारोपयोगित्वं तत्सामर्थ्यं संक्षेपेण सृष्टि प्रलयादौसिद्धान्तनिष्कर्षश्चेत्येतेऽर्थाःव्यञ्जिता' इतिसिद्धम् ३

(भाषार्थ)स्थावर और जङ्गमके अद्भुत आकार और वाणीसे परिपूर्ण विराट को संहार करने के लिये अपने हृदय पर सोनेकी लालसा रखने वाले भगवान् की इच्छा जान कर जिह्नोंने अपने मुखसे विद्यायुक्त करोड़ोंरुद्रोंकोउत्पन्नकिया मै उन श्रीमान् दीनोंके रक्षक श्री लक्ष्मणजीके शरणमेंप्राप्तहूँ,

(भावार्थ , जब भगवान् ने शेष शय्या पर शयन करने की इच्छा किया तब इस बात को जान कर लक्ष्मण जी ने सम्पूर्ण संसार को संहार करने के लिए अपने मुखसे करोड़ों रुद्रों को पैदा किया,

(अनेन त्रिलोक्यां भगवदुपासना महोपदेशकत्वमाह)

असंख्येब्रह्माण्डेप्रचुरजन भाण्डेऽनुषवनं–
प्रजातैर्जीवौघैर्विविधतमवाग्रूपजनि भिः
सहस्रास्योत्थादर्हयतिनवनाम्नो मधुरिपुं–
प्रपद्ये श्रीमन्तंक्षपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥ ४ ॥

(अन्वयः) प्रचुरजनभाण्डे, असंख्येब्रह्माण्डे, अनुषवनम्, प्रजातैः, विविधतमवाग्रूपजनिभिः, जीवौघैः,(यः) सहस्रास्योत्थात्, नवनाम्नः, मधुरिपुम्, अर्हयति, (तं) श्री, लक्ष्मण मुनिम्प्रपद्ये,

(व्याख्या) प्रचुराश्चतेजनास्तेषांभाण्डे, प्रभूतलोकपात्रे, (लोकस्तु भुवनेजन इत्यमरः) असंख्येऽपरिमिते, ब्रह्माण्डे, विरञ्चिसर्गे, अनुषवनंप्रतिक्षणम्, प्रजातैरुत्पन्नैः, विविधतमा वाचोरूपाणिजनयश्चयेषांते तैस्तथोक्तैर्बहुप्रकारवचनाकृत्युद्भवैः, जीवौघैःप्राणिसमूहैः, (करणैः) सहस्रास्येभ्यउत्थं तस्मात् दशशतमुखोत्पन्नात्, नवनाम्नः नूतनाभिधानात्, मधुरिपुं मधुसूदनम्,यःश्रीलक्ष्मणमुनिः, अर्हयति पूजयति, (तं) श्रीलक्ष्मणमुनिंप्रपद्ये, अर्ह पूजायामितिधातोर्णिचिरूपम्, (जनि

रुत्पत्तिरु द्भवइतिकोःष) एतेनजगदाचार्य्यत्व मप्यस्यैवध्वन्यते-
नवनाम्न इतिपदस्येत्थंविचारःयत्प्रतिदिनं श्रीशेष नारायणो
भगवद्गुणान् गायन्नपि नाद्यावधिपारं जगाम ततश्चानुदिनं
भगवद्यशोगानेन दशशताननात्सहस्रनाम्ना मुत्पत्तिर्निर्विवाद
सिद्धा, उक्तञ्च श्रीमद्भागवते द्वितीय स्कन्धे ७ अध्याये,
नान्तंविदाम्यह ममीमुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्यकुतो
परेये–गायन् गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापिसमव
स्यतिनास्य पारम् ॥ ४१ ॥ इतिन ारदंप्रति प्रजापतेरुक्तिराव
श्यमादरणीयेतिदिक्–

(ता.)तदेवंसूचीकटाहन्यायेनसंग्रहेणलक्ष्मणस्तोत्रस्याऽऽरम्भणीय
त्वं रामावरजस्यच शेषरूपेण जगत्सृष्टिप्रलययोः,विशेषोपकर
णताञ्च प्रतिपाद्य सम्प्रति स्थितौ बद्धानां सर्वेषां कृते बहु
विधशास्त्रप्रवर्तनमुखेन सम्यक् ज्ञानोत्पादनपूर्वकं तेषां भक्त्या
दि मोक्षोपायेषु प्रवृत्युत्पादनेन सर्वेषां बन्धच्छेदैक प्रवणतां
तत्रापि सर्वेषा माचार्य्यरूपेणावस्थाया भगवन्नाम सङ्कीर्त
नादीनां,भक्तिपरीवाहप्रकाराणां स्वाचारेणशिक्षणञ्च प्रति
पादयन्त एतेषा मुपकाराणा मनन्तेषु ब्रह्माण्डेषु सर्वत्र सर्व
दा प्यव्याहतप्रवृत्तिताञ्च प्रकाशयन्ति । असंख्येत्यादिना ।
'असंख्य, इत्यत्रामुनाऽसंख्य इति विशेषनिर्देशात् सर्वैर्जीवैः
स्वतस्सर्वज्ञेन नारायणेनापि संख्यातुमशक्यत्वंव्यज्यते । नचै-
तावता सर्वेश्वरस्य सर्वज्ञताहानि राशङ्कितुंयुज्यते । यतः

परमार्थतोऽसंख्येयान। मराडानां संख्यातत्वाभिमान एवभ्रा-
न्तिरूपतयाऽसर्वज्ञतामापादयति । तथाह्यनुगृहीतंत्रयीकराठ
मङ्गलसूत्रायमानोक्तिभिः श्रीवत्साङ्कमिश्रैः "यन्नास्त्येवतदज्ञता
मनुगुणंसर्वज्ञातायाा विदुर्व्योमाम्भोजमिदन्तयाकिल विदन्भ्रा-
न्तोऽय मित्युच्यतयिति। ब्रह्माराडयित्यनेन" अपएव ससर्जादौ
तासुवीज मवासृजत् ॥ तदराडमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
"तस्मिञ्जज्ञे स्वयंब्रम्हा सर्वलोकपितामह" इतिभेषजायमान
यत्किञ्चनोक्तेर्मनो र्वचनानुसारेण ब्रह्मणोऽपिकार्य्यत्व कर्मवश्य-
त्वप्रतीतेस्तस्याप्युपदेष्टृत्वं व्यज्यते। प्रचुरभाराड इत्यनेन
देबतिर्य्यङ्मनुष्यस्थावरात्मना नानाविधवद्धजीवपरिपूर्णत्वं
बिवक्षितम्। प्रजातैरित्यादिना वर्णाश्रमादि नानाविधभेद-
भिन्नानां पशुमृगपक्षिप्रभृतीनाञ्च यथाधिकारं भक्तेः प्रपत्ते
र्वोपदेशस्तदनुष्ठापनप्रकारश्चाभिसंहितः तादृशजीवौघैस्साकं
"तद्धेदं तर्ह्यव्यक्तमासीत्तन्नामरूपाभ्याँ व्याक्रियत" इत्यनेन
जीवेनात्मना नुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि च चराचरव्य-
पाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशोऽभक्तस्तद्भावभावित्वात्स ईसमा-
प्नोषि ततोऽसिसर्वः,नताःस्मःसर्ववचसाँ प्रतिष्ठायत्र शाश्वते,
निष्कर्षाःकृतहानौ विमति यदपदान्यन्तरात्मानमेकं तन्मूर्तें
र्वाचकत्वादभिदधति यथा रामकृष्णादिशब्दाः ॥ सर्वेषामाप्त-
मुख्यै रगणिचबचसाँ शाश्वतेऽस्मिन्प्रतिष्ठा पाके स्तस्याः
प्रतीतेर्जगति तदितरैःस्याच्चभङ्त्वा प्रयोगः॥ इति श्रुतिसूत्र-

पुराणाचार्य्यं श्रीसूकृत्यादिभिश्चिदचिद्रूप भगवच्छरीरवाचिनां शब्दानाँ तदन्तरात्म भगवद्वाचकतायाः सिद्धतया सर्वेषामपिनाम्नां भगवन्नामत्वात्तेषां सर्वेषां सङ्कीर्तनस्य प्रणामार्चनादिरूपाणा ञ्चानवधिकातिशय भगवत्प्रेमपरीवाह प्रकाराणां "यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः" इत्युक्तरीत्या स्वानुष्ठानेन शिक्षणपूर्वकं भगवत्प्रीणन माहुः"सहस्रास्येत्यादिना" तदेवं श्रीमतो लक्ष्मणस्य जगत्स्थितिकाले ब्रह्मप्रभृतीनां सर्वेषाँ कर्मपाशग्रथितानामसंख्यब्रह्माण्डोदुम्बरकीटकल्पानां जीवानाँ विमोक्षणाय तत्तदधिकारानुगुणोपायोपदेशः स्वानुष्ठानादिप्रदर्शनञ्चैतयो र्निर्हेतुककारुण्यैकमूलत्वं चाभिदधानैरनन्तरं वक्ष्यमाणानामर्थानामिष्टंहि विदुषाँलोके "समासव्यासधारणम्" इत्युक्तरीत्या सुग्रहत्वाय समासो व्यधायीति विभावनीयम् ॥ ४ ॥

(भाषार्थ) अनेक जीवोंसे परिपूर्ण जोअपरमितब्रह्माण्डहैं उनमे प्रतिक्षण उत्पन्न होने वाले बिबिध भाषा और रूपों से युक्त जो जीव समूह हैं उनसे हजार मुख से उत्पन्न होने वाले नवीन नामों से (जो) भगवान् की पूजा कराते हैं, ऐसे श्रीमान् दीनोंके रक्षक श्रीलक्ष्मणजी के शरणमे प्राप्तहैं,

(अनेन शब्द शास्त्र प्रणेतृत्वमाह)–

अपेगौनर्दे र्ग्राञ्जलिकमलजः सान्ध्यसमये–

विवादप्रत्यस्तां दुर बगमनां पाणिनिगवीम् ;
सुनिर्णीय व्याख्यापयदमित विद्वत्समितिषु ॥
प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम्,।

(अन्वयः) गोनर्दे (देशे) सान्ध्य समये, ऋषेः, अर्घाञ्जलि कमलजः, प्रत्यस्ताम्, दुरवगमनाम्, पाणिनिगवीम्, (यः) सुनिर्णीय, अमितविद्वत्समितिषु, व्याख्यापयत्, (तं (श्री लक्ष्मण, मुनिम् प्रपद्ये,

(व्याख्या) गोनर्दे गोनर्दाख्येदेशे, सान्ध्य समये, सायंकाले, सन्ध्यावन्दनंविदधतः कस्यचित्, ऋषेः, अर्घार्थमञ्जलि स्तस्मिन् यत्कमलं तस्माज्जातो जलाञ्जलिपद्मोद्भवः, (मूल्येपूजाविधा वर्घइति कोषः,) विवादेन प्रत्यस्तां विवादप्रत्यस्तां विरुद्धो क्तिलुप्तप्रायाम्, अतएव दुरवगमनांदुर्ज्ञेयाम्, पाणिनिगवींशब्द शास्त्रम्,सुनिर्णीयसुनिश्चित्य, अमितायेविद्वान्सस्तेषांसमितिषु असंख्यबुधसंसदि, (सभासमितिसंसदइत्यमरः) यः श्रीलक्ष्म ण मुनिः व्याख्यापयत्, व्याख्यांकरोत्याचष्टे वा स्वार्थेणिचि- रूपसिद्धिः (तं) श्रीलक्ष्मणमुनिंप्रपद्ये

(ता.) अथेदानींश्रीमतालक्ष्मणेनतत्तदवतारेषुकृतानामुपकाराणां मध्ये गोनर्ददेशे पतञ्जलिरूपेणावतीर्य्य महाभाष्यप्रणयनरूपं महोपकारमाहुः-'ऋषेरित्यादिना' । तत्रसर्वेषांजीवानां साङ्गसा रीरस्कवेदेभ्यो ब्रह्म तत्स्वभावादिकं यथावगत्योपासनेन भग वान्प्राप्य इति श्रुतिशिरश्शतनिकरसिद्धोऽयमर्थः । तत्र वेदार्थ

शक्तिग्राहकशिरोमणिना व्याकरणेन विना नसिध्यति। अत स्तादृशव्याकरणमूर्द्धन्यं पाणिनीयशास्त्रं बहुविधैर्व्याख्यातृभि र्बहुधाविप्लावितमासीत् । तेन मन्दमतीनां साध्वसाधुविवे काभावेन शक्तिग्रहो दुर्ग्रहःसंवृत्तः । तदानींतादृशव्याख्यानाय शब्दना मेकदेशितत्वेन दूषणपूर्वकं व्याख्यानं यथावत् पतञ्ज लिना प्राणायि। अत इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्, यदिशब्दाह्वयंज्योतिरासंसारं न दीप्यते इत्युक्त रीत्यामहाम हिमशालिन श्शब्दस्य साध्वसाधुविवेकपूर्वकं यथावस्थितश क्ति निष्कर्षैकप्रवृत्तमहाभाष्यप्रणयनमेव मुमुक्षूणांवेदार्थनिर्धा रणसहकारीति तादृशएवोपकारः कथमतोऽभिधातुमर्हति । किञ्च 'एकःशब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोकेच कामधु ग्भवति' इति व्याकरणात् साधुशब्दं ज्ञात्वा प्रयुञ्जानानां स्वर्ग सिद्धिरपि श्रूयते। इतराणिच फलानि महाभाष्यपस्पशाह्नि का द्विज्ञेयानीति नविशेषस्तूष्णीमहे । अत्र 'ऋषे गोनर्दीयाञ्ज लिकमलजः सान्ध्य समये' इत्युक्त्या पतञ्जलिशब्दव्युत्पत्तिः सूचिता भवति । गोनर्ददेशे सन्ध्यायां कस्यचिदृषे रञ्जलेः पतित इति शब्दार्थमभिदधानै र्नागेशभट्टै रंजलेः पतित इति हि व्यग्राहि । साक्षात्सर्परूपेणावतारणाज्जडदाकार त्वेनाप्रच्युतस्वाभाविकप्रभाववत्वं व्यज्यते । 'विवादप्रत्यस्तां पाणिनिगवींव्याख्यापयत्' इत्यनेन नानाविधैकदेशमतनिराक रणपूर्वकव्याख्यानेन शैली व्यज्यते 'सुनिर्णीयव्याख्यापयद

नितविद्वत्समितिषु' इत्यनेन सर्वज्ञकल्पमहर्षिभूयिष्ठासु बहुविधासु सभासु परमतनिराकरणपूर्वकं सर्वैरपि श्लाघनीयरीत्या व्याख्यानादस्य त्रिकालसम्भावित दूषणराहित्येन सर्वैरप्युपादेयतापि संहता भवति । शास्त्रान्तरभाष्यानामपि लघीयस्तां द्योतयता महाभाष्यशब्देन विख्यातस्य ग्रन्थस्य प्रणयने चतुर्वर्गकाङ्क्षिणां सर्वेषामप्यनन्यसुशकउपकारः कृत इति सर्वं निरवद्यम् ॥५॥

(भाषार्थ,गोनर्द नामक देशमें सन्ध्या करते समय किसी महर्षिके जलाञ्जलि कमलसे उत्पन्न होकर विवाद ग्रस्त दुःखसे जानने योग्य जो व्याकरण शास्त्र है उसका सम्यक् निर्णय कर अनेक विद्वानों की सभामें जिन्होंने व्याख्या की (महाभाष्यका निर्माण किया,) ऐसे श्रीमान् दोनोंके रक्षक, श्री लक्ष्मण जी के शरण में प्राप्त हैं

(भावार्थ)किसीसमय गोनर्द देशमें एक कोई महर्षि सन्ध्या कररहे थे कि आकस्मात् उनके जलाँजलि में एक सर्प दिखाई दिया, जिसको देख शीघ्रता के कारण उन्होने कह दिया कोर्भवान् (अर्थात् आप कौन हैं) इस पद में रकार अधिक आ गया जो व्याकरण रीत्या अशुद्ध है, इस कारण सर्प ने उत्तर दिया, सर्पोऽहम्; (अर्थात् मै सर्प हूँ) इस पद में रकार आना चाहिये सो नही आया इस कारण महर्षि ने पूँछा, "रेफः क्वगतः" (अर्थात् रेफ कहां गया) तब उसने उत्तर

दिया 'पूर्वं भवतैव गृहीतो रेफः, (प्रथमही आप रेफ ग्रहण कर चुके हैं) इस वाक्य को सुन कर महर्षि ने सोचा कि यह अवश्य व्याकरण शास्त्रके विचार करने वाला होगा; यही महर्षि पतंजलि का सूक्ष्म इतिहास है ।

(अनेनायुर्वेद प्रवर्तकत्वमप्यस्यैवेति सूच्यते,)

शिरोरत्नव्राताऽमृतकिरण सिक्तौषधिगणै,
बृंहत्पाप व्याधिग्लपितवपुषांलब्धजनुषाम् ।
रुजंदूरीकर्तुं चरकमवदद्वैद्यकविधिं,
प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपया शरणं लक्ष्मण मुनिम् ॥६॥

(अन्वयः) शिरोरत्नव्राताऽमृतकिरण सिक्तौषधिगणैः, बृंहत्पापव्याधिग्लपितवपुषाम्, लब्धजनुषाम्, रुजम्, दूरीकर्तुम् (यः) वैद्यकविधिम्, चरकम्, अवदत्, (तं) श्री लक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये,

(व्याख्या) शिरःसुमूर्द्धसुयानि रत्नानि मणयः'तेषां व्राताः संघाता एव अमृत किरणाश्चन्द्राः तैः सिक्ता आर्द्रीकृताःतेच ते औषधिगणाभेषजसमूहास्तैस्तथोक्तैः, (स्तो मौघ निकर व्रातवार संघात सञ्चयाः, किरणोऽस्रमयूखांशु गभस्ति घृणि रस्मय इति चामरः) बृहत्पापा,विशालकल्मषा एव व्याधयो गदास्तैः ग्लपितं म्लानं वपुः शरीरमेषां तेषांतथोक्तानाम्, (पापंकि.ल्वप कल्मषं, रोगव्याधि गदामयाश्चेत्यमरः) लब्धं

प्राप्तं जनुर्जन्म यै स्तेषाम्, जनुर्जननि जन्मानीतिकोषः) रुजंरोगम्, दूरीकर्तुम्रविनाशयितुम्, यः श्री लक्ष्मणमुनिः वैद्यक स्य विधिं वैद्यक विधिं चिकित्सा शास्त्र प्रकारं, चरकं चर काख्यं ग्रन्थम्, अवदत् निर्ममौ, तंश्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये, पूर्वं जन्मकृतं पापं व्याधि रूपेण वाधत इति बृहत्पाप व्याधि मिति पदेनगतार्थम्, (ता०) पूर्वश्लोकेन सर्वेषामपि चतुर्वर्गोप-योगि व्याकरणशास्त्रप्रणयनेन महोपकारः कृत इति प्रत्यपादि। तत्र मनुष्यादीनां शरीरस्वास्थ्याभावे मनोऽपिनैवयत्किञ्चिदपि विवेक्तुं प्रभवतीति स्वानुभवपुनरुक्तमिदमखिलानां ध्यानादिषु चैकाग्रता न संपाद्येत। अतः शारीरिकसौख्यसम्पत्तये आयुर्वे दशास्त्रप्रणयनमवश्यापेक्षितम्। किञ्च 'लोकेनित्येष्टोऽनर्थरो म स्तदितरदतथा' इत्युक्तरीत्येष्टप्राप्ति मपेक्ष्याप्यनिष्टनिवृत्ति रेवात्यन्त मभीष्टा वर्तते। अतो दुर्विषहदुःखप्रदरोगनिवर्तक वैद्यक प्रणयनमेव सर्वेषा मत्यन्ताभिलषितार्थसाधन समर्थ मित्यकामै रप्यङ्गीकरणीयम्। किञ्च पारलौकिकफलस्यनास्ति काद्यनभिमतत्वेऽपि शरीरारोग्यं सर्वाभीष्टमिति सार्वजनीनमे तदतः 'शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधन' मित्युक्तरीत्यासर्वविधपुरुषा र्थसाधनस्य शरीरस्यारोग्योपयोगिचिकित्साबोधकशास्त्र मेव सर्वशास्त्रोत्तममित्यभिमत्य तत्प्रणयनेन महोपकारः कृत इत्याहुः 'शिरोरत्नेति'। चन्द्रस्यौषधीशतया तत्किरणै रोषधी नां रसवत्तरत्वं सर्वाविगीतम्। तथायं स्वशिरोरत्नप्रान्तामृत

किरणैः सेचनैः सेचनेनौषधीनां रसवत्तरत्व मभिवर्द्धयतीति प्रथमपादेन लब्धजनुषा मिति सामान्यनिर्देशादास्तिकना स्तिकविभाग मन्तरा सर्वोपयोगित्वं शास्त्रस्याभिसंहितम् प्रात्यह्निक वात्फलस्य नास्तिकानामपि तत्र विगीत्यभाव सिद्धवत्कारेण फलनिर्देशपूर्वकं शास्त्रं नाम्ना तृतीयपादेन प्रत्यपादि। तदेवं सर्वोपायनिवर्तकत्वेन फलान्तरेभ्योऽपि सर्वै श्चात्यन्तमभिलषितत्वेन नास्तिकैरपि दृष्टफलत्वेन सर्वाभि लषितस्यारोग्यस्यसंपादक शास्त्रप्रणयनेन सर्वतोमुखकारुण्य मभिव्यञ्जितं तिसिद्ध मितिदिक्॥ ६ ॥

(भाषार्थ) सहस्र शिरोमें विद्यमान् अनेक रत्न रूप चन्द्रमा की किरणोंसे सिञ्चित जोअनेक औषधियां हैं उन (औषधियों) के द्वारा बड़े २ पापरूपी व्याधियोंसे क्षीण हो रहा है शरीर जिनका ऐसे प्राणियों के रोग को दूर करने के लिये जिन्होंने आयुर्वेद शास्त्र के विधि को बतलाने वाले चरक नामक ग्रन्थ का निर्माण किया है ऐसे श्रीमान् दीनों के रक्षक श्री लक्ष्मण जी के शरण में प्राप्तहैं,

(अनेन योग शास्त्र कर्तृत्वमाह)

जरामृत्यूद्विग्नां पुनरपि समुद्वीक्ष्यजगतीं
कृपाम्भोधिर्योगंव्यरचयत पातञ्जलमयम्,
लभन्ते येनेष्टंक्रतुशतदुरापंजनपदाः ।

प्रपद्ये श्रीमन्तं, कृपणशरणं लक्ष्मण मुनिम् ॥७

(अन्वयः) कृपाम्भोधिः, अयम्, (श्रीलक्ष्मणः) पुनरपि, जरामृत्यू द्विग्नां, जगतीं,समुद्वीक्ष्य, पातञ्जलं, योगं, व्यरचयत, येन जनपदाः, क्रतुशतदुरापम्, इष्टं, लभन्ते, तंश्रीलक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये–

(व्याख्या) कृपाया अम्भोधिः कृपाम्भोधिर्दयार्णवः, (कृपा दयानुकम्पास्यादित्यमरः) अयं श्री लक्ष्मणः, पुनरपि भूयोऽपि,जरयामृत्युनाचोद्विग्नां जरामरणव्याकुलाम्, जगतींभुवनम्, (अथोजगतीलोकोविष्टपंभुवनं जगदित्यमरः) समुद्वीक्ष्य सम्यगवलोक्य, वैद्यकेनक्षणिक दुःखनाशं ज्ञात्वेत्यर्थः– पतञ्जलिनाप्रोक्तं पातञ्जलं पतञ्जलि मुनिप्रणीतम्, तेनप्रोक्तमित्यण्,योगंयोगशास्त्रम्, अनन्तसुखलाभाय नित्यानन्दलाभस्तुयोगेनैव संजायते नभेषजसेवनादिभिरितिप्रयोजनम्– व्यरचयत प्रणीतवान्, येनयोगशास्त्रेण, जनपदालोकाः, क्रतुशतदुरापमनन्तयज्ञदुर्लभम्, (यज्ञःसवोऽध्वरोयागः सप्ततन्तुमखःक्रतुरितिकोषः) इष्टं मनोरथम्, लभन्तेप्राप्नुवन्ति, तंश्रीलक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये अत्रांशेकश्चिदभियुक्तश्लोकोऽप्यनुसन्धेयो यथा, योगेनचित्तस्य पदेनवाचांमलं शरीरस्यचवैद्यकेन,योऽपाकरोत्तंप्रवरं मुनीनां पतंजलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि, इति, एतेनापि शास्त्रत्रयाणां कर्तृत्व मवतारान्तरेण श्रीलक्ष्मणस्यैवोपयुज्यते क्रतुशतदुरापमितिपदेनकर्ममात्रस्याप्युपलक्षणन्तथा

च कर्ममात्रेणापितां, गतिं जनान,प्राप्नुवन्ति,यां योगेनेतिभाव स्तदेव श्रीमद्भागवते द्वितीय स्कन्धे २ अध्याये, २३ श्लोके लिखितं, योगेश्वराणांगति माहुरन्तर्वहि स्त्रिलोक्याः पवना न्तरात्मनाम्,नकर्मभिस्तांगतिमाप्नुवन्तिविद्यातपोयोग समाधिभाजामित्यादि(तात्पर्यं०)तदेवंमहाभाष्यस्यायुर्वेदस्यच प्रणयनेऽपिप्राणिनाञ्जरामरणाद्याध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैवि कतापत्रयपरीतानांनिरवधिकसुखरूपायामुक्तेरसिद्धेस्तादृशमोक्षो पयोगि योगतत्स्वरूपतदङ्गादिविशदीकरण प्रवृत्तपातञ्जलयो गसूत्रप्रणयनं सर्वोपकारेभ्योऽपिविशिष्टमिति मत्वान्ते तत्प्र स्तुवन्ति। जरामृत्यूद्विग्नामित्यनेन वैराग्यपादोक्ताः सर्वेऽपि क्लेशा अभिसंहिताः। पुनरपि समुद्वीक्ष्य जगती मित्यनेन पूर्वं विहितेभ्य उपकारेभ्योऽपि लोकनिःशेषदुःखनिवृत्यभावं पर्य्यालोच्य शास्त्रप्रणयनस्य सूचनातः सर्वेतरोपकारेभ्योऽपि विशिष्टत्वं साक्षान्मोक्षोपयोगित्वंच व्यञ्जतम्। कृपाम्भोधिं रित्यनेन केवलकृपामूलकत्वेनविप्रलिप्सादोनामभावत् सर्वां शेऽपि प्रमाण्यंध्वन्यते पातञ्जलमित्यनेन। पतन्तोऽञ्जलयो यस्मै,इति, अञ्जलेः पतित इत्यनेन वा विग्रहेण सर्वजनसम्पूज्य त्वस्य सर्परूपेणावतरणात्। अजहत्स्वभावत्वस्यच कथनात् लोकोत्तरप्रभावस्तन्मूलस्य शास्त्रस्य दुःष्प्रधर्षत्वञ्च व्यज्यते। अतःपरमनन्यसाध्यमहाफलप्रदत्वेन वैशिष्ट्यमाहुस्तृतीयपा- देन। तदेवं सर्वोपकारेभ्योऽपि योगशास्त्रप्रणयनस्याधिक्यं

प्रत्यपादीति सिद्धम् ॥ ७ ॥

(भाषार्थ) दयासागर भगवान्पतञ्जलिनेचरकसंहिताकानिर्माण कर भी जब जनोंको जरा (बृद्धावस्था) एवं मृत्युसे व्याकुल देखा तब (नित्यानन्द प्राप्तिके लिए) पातञ्जल नामक योग शास्त्र का निर्माण किया जिससे मनुष्य ऐसे मनोरथों को प्राप्त करलेतेहैं, जो–अनेकों यज्ञों से भी दुर्लभहैं। (ऐसे योग शास्त्र के बनाने वाले श्रीमान् दीनों के रक्षक, श्रीलक्ष्मणजी के शरण मे प्राप्तहैं।

औषधादि भक्षणसे क्षणिक दुःखका ही नाश होताहै नित्यानन्द की प्राप्ति केवल योगही से हो सक्तीहै, अतः पतञ्जलिने (जो लक्ष्मणजीके अवतारथे) लोकोप कारार्थं योग शास्त्र का निर्माण किया,

(अस्मिन्श्लोके, अवतारद्वयचरित्रदिग्दर्शनमाह)

कनीयान्ज्येष्ठःसन् रघुयदुगृहेबान्धवहितं–
रणेऽरण्येराज्ये तदभिमतकैङ्कर्य्यरसिकः ॥
मनुष्यानुष्ठेयंप्रतियुगमहो ग्राहयतियः–
प्रपद्येश्रीमन्तं, कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥८॥

(अन्वयः) रघुयदुगृहे, कनीयान् जेष्ठः सन्, रणे, अरण्ये, राज्ये, तदभिमतकैङ्कर्यरसिकः, मनुष्यानुष्ठेयं, बान्धवहितं, (यः) प्रतियुगं, ग्राहयति, अहो, तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये–

(व्याख्या) रघोर्यदोश्चगृहे रघुवंशेयदुवंशेच, कनीयान्

कनिष्ठ :,जेष्ठो ज्यायांश्च, (अर्थात् रघुकुले कनीयान् श्रीलक्ष्मणरूपेण, यदुगृहेजेष्ठः श्रीबलरामरूपेणेतिक्रमः) सन् भवन्, रणेलंकायां जरासन्धः सादि युद्धेच, अरण्ये दण्डकारण्ये, बृन्दावनेच, राज्येऽयोध्यायां द्वारिकायाञ्च, तस्यश्रीकृष्णस्य रामस्यच, यदभिमतं कैङ्कर्यञ्च स्तत्ररसिकः (अभिमते बलदेवः कैङ्कर्येलक्ष्मण इतियथोचितमुभयत्रापि योजनीयम्) तदीयशेषत्व पारतन्त्र्यप्रिय परिचर्य्योत्कण्ठितमना इतितदर्थः यथाह, बाल्मीकीयरामायणे, अहंसर्वंकरिष्यामि जाग्रतःस्वपतश्चते—मनुष्यैरनुष्ठेयं मनुष्याष्ठेयं मानवोचितम्, (यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजन इत्युक्तप्रकारात्) बान्धवहितं बन्धुकल्याणम्, यः (श्रीलक्ष्मणः) प्रतियुगं कृतादिषु, ग्राहयति, स्वीकारयति, अहो आश्चर्य्यम्, तं श्रीलक्ष्मणमुनिंप्रपद्ये—अनेन बाल्मीकीयरामायणस्य श्रीमद्भागवतान्तर्गत दशमस्कन्धस्यच कथा संक्षेपतः सूच्यते—

(ता.) तदेवंसृष्टिस्थितिसंहारेषु श्रियःपतेः सहकारितां तथा त्रिष्वपिसमयेषु जीवसमुद्धरणैकतानप्रवृत्तिञ्च श्रीलक्ष्मणस्य प्रतिपाद्येदानीं, साधुत्राणादिहेतोः समुचितसमये विग्रहांशैः स्वकीयैः स्वेच्छातः सत्यरूपोविभुरवतरति स्वानूगुणौघाननुरुन्धन्नित्युक्तरीत्याह्यप्राकृतदिव्यमंगल विग्रहेणासाकं साधुसंरक्षणार्थमवतरणप्रकारंप्रस्तुवन्ति,तत्रापिसत्यसंकल्पस्य भगवतोऽवतारेणैव सर्वसमीहितसिद्धौसम्भवन्त्यामादिशेषोवतार

स्तदातदा भगवत्कैङ्कर्य्यविधानायैवेतिच प्रतिपादयन्त आत्मा-नुरूपपुरुषार्थव्यवस्थया जीवानां परशेषतैकतानस्वरूपतया तत्कैङ्कर्य्यं साध्वीनां भर्तृ शुश्रूषणावत् परमसुखजनकमेव स्या-दिति लक्ष्मणाचारेण सम्पादयन्तः "आविर्भूतस्वरूपानि रवधिकसुखब्रह्मभुक्तिस्तुमुक्तिः सेवात्वाद्दुःखकृत्सा भवति यदि न तद्धर्मिमानोपरोधात् ॥ पाप्माचास्मिन्नुपाधिः सच न खलु तदा पुण्यपापव्यपाया दात्मानोविष्णुशेषा इतिचसुखमयी सा स्वरूपानुरूप्यात् ॥" इत्युक्तरीत्या भगवत्सेवा दुःखहेतुः, सेवात्वात्, राजसेवावदिति हैतुकानुमानस्य धर्म्मिग्राहक-मानबाधं पापोपाधिकत्व मात्मानुरूपपुरुषार्थव्यवस्थया सुखै-कतानतया बाधञ्चसूचयित्वाऽनुपादेयतां प्रदर्शयन्त एतादृशकैङ्कर्य्यस्य सुखैकतानताज्ञापनार्थमेवरघुयदुगृहे लक्ष्मणबलभद्रत्वेन शेषावतार इतिनिबध्नन्ति कनीयाञ्ज्येष्ठ इति' प्रथमतो रघुवंशे लक्ष्मणत्वेनावतारः समनन्तरयुगे बल-भद्रत्वेनयदुवंशयिति अवतारयोःपौर्वापर्य्यशब्दयोः पौर्वापर्य्येणसूच्यते । रघुयदुगृहे इति उभयत्रापि छायावद-नुवर्तनं स्वरूपनिबन्धनं निरुपाधिकमिति व्यज्यते । कनीयान् ज्येष्ठ इत्यनेनोत्कर्षापकर्षाद्यवलम्बनंसर्वमपिस्वरूपज्ञान याथात्म्यज्ञानवतः परमपुरुषकिञ्चित्काराधानैकोद्देश्यकतया शर्करौघव्यतिकरितसुधासिन्धुवत्स्वादुभूतमेव स्यादिति व्यज्यते । "रणेऽरण्येराज्ये तदभिमतकैङ्कर्य्यरसिकः" इत्यनेन

सम्पदि विपदिवा सर्वथा पतिव्रताभिरिव भर्तुर्भगवतः पर-मैकान्तिभिःसेवा विधेयेति सूचनेन तदाज्ञारूप श्रुतिस्मृति चोदितनित्यनैमित्तिकादिरूपकैङ्कर्य्यमप्यनुष्ठेयमितिव्यक्त्या ,माङ्गल्यतन्तुवस्त्रादीन्संरक्षति यथो वधूः॥तथा प्रपन्नः शास्त्रीयपतिकैङ्कर्य्यपद्धति मित्यभिहितम् प्रपन्नोत्तरकृत्यं ध्वन्यते। "मनुष्यानुष्ठेयं ग्राहयति यस्तदभिमतकैङ्कर्य्यरसिकः" इत्यनेन "आम्राश्चसिक्ता; पितरश्चप्रीणिता भवन्ति" इति न्यायेनाऽवतोरस्य फलरूपा स्वेष्टकैङ्कर्य्यरसानुभस्य "यद्यदाचरति श्रेष्ठ-स्तत्तदेवेतरो जनः" इत्युक्तरीत्या दुःस्तर्कादि निरासपूर्वकं स्वदृष्टान्तेन कैङ्कर्य्यस्य सुखजनकत्वानुमानस्य सम्पत्ति रना-यासस्सिद्धेति व्यज्यतइति सर्वं समञ्जसम् ॥८॥

(भाषार्थ)रघुबंश और यदुबंशमे कनिष्ठ तथा जेष्ठ होकर(रघुबंश मेलक्ष्मण रूपसे और यदुवंश मे बलभद्र रूपसे) रणमे (रावणादिकोंके युद्ध मे और जरा सन्धादिकों के युद्ध मे) अरण्य मे (दण्डकारण्य तथा बृन्दावनमे) राज्य मे(अयोध्या और मथुरा तथा द्वारिका मे) सदा कैङ्कर्य्यं रत श्रीलक्ष्मणजी तथा अभिमत कार्य करने वाले श्री बलभद्रजी मानवोंसे करने योग्य जो भ्रातृ भाव है उसको प्रति युगमे जो गृहण कराते हैं ऐसे श्रीलक्ष्मणजी के शरण मे प्राप्तहैं ।

(इतःपरंपञ्चभिःश्लो॰ रामायणरत्नाकरोपलब्धचरित्ररत्नमाह)

कृतोद्वाहोगच्छन्निमिनगरतः कोशलपुरीं—

नृपोत्कर्षामर्षान्तरिततपसं भार्गवमणिम् ॥
प्रभावोत्साहाप्तैः प्रणतमकरोच्छौर्य्यबचनैः—
प्रपद्येश्रीमन्तं, कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥६॥

(अन्वयः) कृतोद्वाहः, निमिनगरतः, कोशलपुरीं गच्छन्, नृपोत्कर्षामर्षा न्तरिततपसं भार्गवमणिम्, प्रभावोत्साहाप्तैः शौर्यबचनैः, (यः) प्रणतम्, अकरोत्, तं, श्रीलक्ष्मणमुनिं, प्रपद्ये-

(व्याख्या) कृतउद्वाहोयेनासौकृतोद्वाहो विहितपरिणयः, निमेर्नगरंनिमिनगरं तस्मान्निमिनगरतो, जनकपुरात्, (पञ्चम्यास्तसिल् वोध्यः) कोशलपुरीमयोध्याम्, गच्छन् व्रजन्, नृपाणांक्षत्रियजातीनामुत्कर्षोऽभ्युदयस्तस्यामर्षोऽसहनं तेनान्तरितंखण्डितं तपःस्वधर्मानुष्ठानं यस्य तं तथोक्तम्, भृगोरपत्यं (भृगुवंशे भवइतियावत्) भार्गवः सएवमणिस्तं परशुरामम्, प्रभावश्चोत्साहश्च प्रभावोत्साहौ, ताभ्यामाप्तास्ते स्तथोक्तैः कोषदण्डजोत्पन्नतेजःप्रभुशक्तिभरितैः, (सप्रभावः प्रतापश्च यत्तेजःकोषदण्डजमित्यमरः) शूरस्यभावःशौर्यं तस्य वचनानि तैस्तथोक्तै वीरत्वबोधकवाक्यैः, यः श्रीलक्ष्मणमुनिः, प्रणतंनम्रम्, अकरोत्, व्यदधात्, तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये, यः परशुरामःप्रतिज्ञयैकविंशतिवारं क्षत्रियरहितं लोकमकार्षीत्तमपि वीरत्वसूचक बचनेनैवायंहीनशक्तिमनयदिति लोकोत्तरमस्यबीरत्वमितिवस्तुध्वन्यते—

(तात्पर्य)तदेवं,कैङ्कर्य्यस्य परमपुरुषार्थरूपत्वं निरुपाधिकत्वञ्चप्रति

पाद्यतदुपायस्यासह्यापचाराणामार्द्रापराधानामप्यवलम्बनीयतां परशुरामवृन्तान्तेन प्रकटयन्तस्तादृशोपायाङ्गीकारोऽपि जामदग्नेर्लक्ष्मणवचनेनैव सिद्ध इति लक्ष्मणस्यलोकोत्तरकारुण्य मनवधिक शौण्डीर्यञ्च प्रतिपादयन्ति कृतोद्वाह इत्यादिना । "कृतोद्वाहो गच्छन्निमिनगरतः कोशलपुरीमित्यनेन परशुरामस्य मङ्गलकालेऽमङ्गलचिकीर्षापूर्वकागमनस्य द्योतनेन मार्गेऽवस्कन्दनेन मार्गणपाटच्चरसध्रीचीनतायाश्च व्यञ्जनेनासह्यापराधत्वमार्द्रापराधत्वञ्चव्यज्यतेनृपोत्कर्षामर्षान्तरिततपसं भार्गवमणिमित्यनेन" क्रोधाग्निं जमदग्निपीडनभवं सन्तर्पयिष्यन् क्रमादक्षत्रामिह सन्तत्क्षय इमां त्रिःसप्तकृत्वः क्षितिम्" इत्युक्तरीत्यैकस्यकृत एकविंशतिकृत्वःक्षत्रियजातीयानां हननात् स्वजातिद्वेषित्वादसह्यापचारत्वंरामेणहरधनुर्भङ्गःकृतइतिपरोत्कर्षस्यासहमानतया रामलक्ष्मणादीनां हननार्थमागत्या चार्द्रापराधत्वञ्च दृढीक्रियते । प्रभावोत्साहाद्यैः प्रणतमकरोच्छौर्य्यवचनै रित्यनेन यक्षानुरूपोबलिः पिशाचानां पिशाचभाषयैवोत्तरं देयमितिन्यायानुसारेण तत्तदनुगुणवचनैः प्रणामं कारितवान् इत्यतःसर्वेष्वपि जन्तुषुलोकोत्तरकारुण्यं भगवत्कैङ्कर्य्योपायबोधन व्यसनिताच बहुमुखं व्यज्यत इति सर्वं मनाविलम् ॥६॥

(भाषार्थ)विवाह कर जनकपुरसे अयोध्या को जाते हुए अन्यायी राजाओं के अभ्युदय का जो असहनहै उससे खण्डित हो

गईहै तपस्या जिनकी ऐसे परशुराम को भी प्रभाव उत्साह और शौर्य्ययुक्त वचनों से जिन्हौंने नम्र कर दिया ऐसे श्रीलक्ष्मणजीके शरणमें प्राप्तहैं—

(अनेन संक्षेपतोऽरण्यकिष्किन्धोक्तं चरित्रमाह)

गिरौदर्य्यांकुञ्जे बिमलमुनिपुञ्जं सुरमयन्—
दवाग्निंवैदेह्या विरहमरिवंशेषु विसृजन् ॥
सखित्वंसार्वात्म्यं प्रभुमनुचरन् प्राजयतयः—
प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम्॥१०॥

(अन्वयः) गिरौदर्य्यांकुञ्जे, बिमलमुनिपुञ्जं, सुरमयन्, वैदेह्याः विरहं, दवाग्निम् अरिवंशेषु, विसृजन्, प्रभुम्, अनुचरन्, (यः) सार्वात्म्यम्, सखित्वम्, प्राजयत (तं) श्रीलक्ष्मणमुनिंप्रपद्ये,

(व्याख्या) गिरौपर्वते, दर्य्यां कन्दरायाम्, (दरीतुकन्दरो वास्त्रीत्यमरः) कुञ्जे लतागृहे, (निकुञ्जकुञ्जौवाक्लीवे लतादिपिहितोदरे, इतिकोषः) विमलाः निर्धूतपापायेमुनयो महर्षय स्तेषांपुञ्जंसमूहम्, सुरमयन् आनन्दयन्, वैदेह्या जानक्याः, विरहंवियोगम्, एवदवाग्निं, बनवह्निम्, अरीणाँ सपत्नानाम्, वंशेषुकुलेषु वेणुषुच (रिपौवैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृद- इत्यमरः) विसृजन्प्रक्षिपन्, प्रभुं श्रीरामम्, अनुचरन् परिचरन्, सन् (यः) सार्वात्म्यं विश्वजनीनम्, सखित्वंसौहार्दम्, प्राजयत सम्पादितवान्, तं श्रीलक्ष्मणमुनिंप्रपद्ये,

(ता.)तदेवं पूर्वतनाभ्याँश्लोकाभ्याँ मुक्तेःस्वरूपं तदुपायस्वरूपञ्च

श्रीलक्ष्मणेन प्रकाशितमिति प्रत्यपादि । इदानीं मोक्षस्वरूपं यथावदवगत्यभगवन्तं प्रपन्नानामुत्तरकृत्यप्रकारोऽपि लक्ष्मणेनैव प्रकाशित इति निरूपयन्ति । तत्र श्रीमद्भिर्भाष्यकारैः परमपदगमनसमये सन्निहितेभ्यः परमार्तेभ्योऽनुमुमूर्षुभ्यः सच्छात्रेभ्य उत्तरकृत्यप्रकारइत्थमन्वग्राहि । तथाहि शरीर यात्राप्रारब्धाधीना, आत्मयात्राच भगवदधीनेत्युभयत्रापि चिन्तानविधेया भगवत्प्रपन्नैः, तर्हिस्वैराचारो विधेयोवेतिचेत्तन्न स्वरूपानुरूपं, परन्तु "स्वापोद्बोधव्यतिकरनिभे भोग मोक्षान्तराले कालंकश्चिज्जगतिविधिना केनचित्स्थाप्यमानानां प्रपन्नानांकर्तव्यपञ्चकंसमस्तिश्रीभाष्यं यथावदवगत्यप्रवर्तनम् । तस्याशक्तौ परांकुशप्रभृति परमर्षिसंदृष्टद्रविडोपनिषदवगतिः । तस्याअप्यशक्तौदेवालयेषु संमार्जनानुलेपनमाला,करणदीपारोपणप्रदक्षिणप्रणामस्तोत्रपाठ वालव्यजनवीजनच्छत्रधारणयात्रावाहनवहनादिकैङ्कर्य्यकरणं, तस्याप्यशक्तौद्वयानुसन्धानम्, तस्याप्यशक्तौ वैष्णवाभिमान्यतयाअवस्थितिरिति । अपिचास्मिल्लोके त्रिविधा,जना,भगवदनुकूला, भगवत्प्रतिकूला उदासीनाश्चेति । तत्रानुकूलेषु चन्दनप्रियतमास्विव परमप्रेम्णा वर्तेत । तत्रप्रतिकूलान्सर्पादीनिवदृष्ट्वा दूरतो विसर्जयेत् । शक्तौसत्यां निगृह्णीयात् अनुभयान्काष्ठलोष्ठादिवन्नाद्रियेत । तत अर्थकामप्रावण्येन यदिभगवदनुकूलानां मनस्तापं विदधीत, तर्हि राजपुत्रापराधाद्राज्ञ इवेश्वरस्य

स्वा तं कलुषं जायेत, यदि धनकामप्रावण्येन प्रतिकूलाननुवर्तेत, तर्हि परिपन्थिसेदनेषु भिदया राज्ञा सहधर्मचारिणीव भगवतावहिष्कृतो भवेत्, यद्यनुभयाननुवर्तेततर्हि रत्नलोष्ठयोरन्तरानभिज्ञश्च भगवता वहिष्कृतोभवेदिति चरमकालेभगवद्भाष्यकारानुगृहीतरीत्या, "आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम् ॥ ततः परतरं प्रोक्तं तदीयाराधनं परम् ॥ मम मद्भक्त भक्तेषु प्रीति रभ्यधिका भवेत् । तस्मान्मद्भक्तभक्ताश्चपूजनीया विशेषतः, यथाशक्ति निगृह्न यात्देवतागुरुनिन्दकान्, इत्यादि प्रमाणप्रमितपद्धत्या च 'अङ्गीकृत्य सतांप्रसत्तिमसतां गर्वोऽपि निर्वापितः' शुद्धानांतु लभेमहि स्थिरधियां शुद्धान्तसिद्धान्तिनां मुक्तैश्वर्य्यदिनप्रभातसमयासत्तिं प्रसत्तिमुहुः' इत्यादि श्रीसूक्त्यनुसारेणच प्रपन्नैर्भागवतप्रसादने,अभागवतनिग्रहेच यथाशक्ति यतितव्यं,इतीदमाचार्य्यादेशश्रीसूक्तिप्रमाणादिपरामर्शिनां करतलामलकायते, तदेतच्छ्रीलक्ष्मणानुष्ठानेन संवादयन्त्याचार्य्याः गिरौदर्य्यां कुञ्ज इत्यादिना पद्येन, तत्रपूर्वपादेन भागवतप्रसादनं प्रतिपाद्यते, तत्राभागवतनिग्रहादपि भागवतसेवायाः प्राधान्यं प्रथमतो निर्देशेन व्यज्यते, गिरौदर्य्यां कुञ्ज इत्यनेनदुर्ल्लङ्घनानाकोणनिलीनाअपिप्रत्यायनेन तत्र २ गत्वान्वेषमन्वेषं भागवताःप्रसादनीया इति ध्वन्यते, विमलसुनिपुञ्जमित्यनेन स्वार्थकर्तृत्वस्वाधीनकर्तृत्व स्वार्थभोक्तृत्वानुसन्धानादिमलरहिता एव परमैकान्तिन इति

व्यज्यते, द्वितीयपादेन वैदेह्या अपहरणेनाशोकवनिकायामशो कार्हाया महाशोकसंधुक्षणेन, "अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा' इत्युक्तरीत्याभगवदनुरूपस्वरूपरूपगुणविभवैश्वर्यशीलाद्यनवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणानन्दिताया इन्दिराया विप्रयोजनेनच भगवत अतिमात्रप्रातिकूल्यव्यवसितानां रावणप्रभृतीनां राक्षसानांहननेनाभागवतनिग्रहः कार्य्य इति सूच्यते, सापराधरावणानुवन्धात्तदीयानामपि हननेना भागवतानुवन्धिनोऽपि यथाशक्तिनिग्राह्या इतिव्यज्यते, तृतीयपादेन वंभागवतप्रसादनभगवद्द्वेषिनिग्रहयोः करण एवस्वरूपस्यसाफल्यंनिरूपाधिकस्वामिनः श्रियःपतेर्निरुत्साद:प्रसादोऽपि प्रजायेतेति प्रख्याप्यत इति सर्वं समञ्जसम् ॥ १० ॥

(भाषार्थ)पर्वत कन्दरा और कुञ्जोंमें श्रेष्ठ मुनिओंको आनन्दित करते हुए जानकीके विरह रूपी दवाग्नि को शत्रुकुल में फेंकते हुए (विरहरूपी दवाग्निसे शत्रुकुल को भस्म करते हुए) जिन्होंने श्रीरामचन्द्र जी की सेवा कर सर्वानुकूल सखित्व को प्राप्त किया है उन श्रीमान् दोनों के रक्षक श्रीलक्ष्मण जी के शरण में प्राप्त हैं।

सुदृप्तः सुग्रीवोऽम्बुधिरपिततोराद्धविभवौ,
चतुर्मासातीतेऽपिनकिमुचितं तौ विविदतुः।
तदायुक्त्यादान्तौ शरणमनयद्योऽग्रजपदं,
प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥११॥

(अन्वयः) सुदृप्तः सुग्रीवः, अम्बुधिरपि ततः,राद्धविभवौ, तौ, चतुर्मासातीते, अपि, उचितम् किम्, इति यदा न विविदतुः तदा युक्त्या दान्तौ' (यः) अग्रजपदम् शरणम्' अनयत्' तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये

(व्याख्या) सुदृप्तः सुगर्वित ' अभिवृद्धश्चः सुग्रीव स्तन्नामकोवानरः' अम्बुधिः समुद्रोऽपि ततो रामात् (सुग्रीवः) समुद्रपक्षे ततः सगरसुतेभ्यः (तत्कुल एवतेषा मुत्पत्तेरिति भावः, राद्धोविवृद्धो विभवऐश्वर्य्यं ययोस्तौ (राधूधातोःक्त प्रत्ययः) तौसुग्रीवार्णवौ'चतुर्मासातीतेऽपिविगतवर्षाकालेऽपि' उचितंयोग्यम् किं, सम्प्रति किंविधेयमितिकर्तव्यताज्ञानम्' यदनेनैवावाँवर्द्धितावतोऽस्यसाहाय्य मवश्यमेवकर्तव्यम्'इति यावत्' इति यदायस्मिन्काले नविविदतुः नज्ञातवन्तौतदा तस्मिन्काले युक्त्यासामाद्युपायैः दान्तौकृतदमनौ' (कर्मभूतौ' इति यावत् दान्तस्तु दमितइत्यमरः)यःश्रीलक्ष्मणमुनिः अग्रजपदं श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजम्' (पदं व्यवसितत्राण स्थान लक्ष्माङ्घ्रिवस्तुष्वित्यमरः) शरणं रक्षकम् (शरणं गृहरक्षित्रोरित्यमरः) अनयत् प्रापयत् (द्विकर्मकान्नीधातोः लङ्रूपसिद्धिः)तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्यइतिपूर्ववत्' ततोराद्ध विभवौ समुद्रपक्षे मारुतिंप्रतिमैनाकवाक्यं "राघवस्यकुलेजातैरुदधिः परिवर्द्धितः, सत्वांरामहितेयुक्तं प्रत्यर्चयति सागरः- वा. रा.सु. काँ. १ सर्ग—तत्रैवमैनाकंप्रति समुद्रस्योक्तिः,अहमि

क्ष्वाकुनाथेन सगरेणाभिवर्द्धितः, इक्ष्वाकुसचिवश्चायं नावसी
दितुमर्हति, इत्यादिप्रमाणमवगन्तव्यम, (ता.) पूर्वश्लो
केनानुकूलेषु प्रतिकूलेषुचप्रपन्नस्यवृत्तिःशिक्षिता अधुनासर्वेषा
मपिपदार्थानामाधेयत्व विधेयत्वशेषत्वैर्भगवत्संबन्धेऽनुवर्तमाने
ऽपिभगवदेकरसिकस्वरूपभागवतत्वविरहात् कदाचित्तद्विच्छेदा
द्वाप्रातिकूल्यव्यवसायाभावाच्च पूर्वोक्तकोटिद्वयविलक्षणानामुदा
सीनानांविषयेसमुचितसमयेस्वतःपरतोवाभगवच्छरणागतिर्ग्राह
यितव्येतिमध्यस्थेषुवृत्तिःप्रख्याप्यतेसुहृद इत्यादीना, सगरतनयै
रभिवर्द्धितस्यापि जलधेर्भगवता प्रतिशिश्ये महोदधे, इत्युक्त
रीत्याप्रतिशयने कृतेऽपि भगवत्साहाय्याकरणात् कृतज्ञताया
अप्रकटीकाराच्च माध्यस्थ्यं व्यज्यते, तथा सगरतनयै रभिवर्द्ध
नाच्छाश्वतिको भगवत्सम्बन्धोऽस्तीतिध्वन्यते, अग्निसाक्षिक
कृतसख्यस्यवालिनिधनपूर्वकं लम्भितराज्यस्य किष्किन्धायां
कामप्रावण्येनाकृष्यमाणहृदयस्यातिपतितप्रतिज्ञा निर्वहणकाल
स्यसुग्रीवस्य मैत्रीरूपे भगवत्सम्बन्धेऽनुवर्तमानेऽपि तदनुगुण
प्रतिज्ञानिर्वहणाभावेन तदानीमौदासीन्यव्यक्त्योभयकोटिवि
निर्मोकः प्रतीयते। एवमुदासीनयो रुभयोरपि भगवच्छरणा
गतिग्राहणं तृतीयपादेन वोध्यते, रामस्य समुद्रदहनने प्रोत्साह
नपूर्वकमाग्नेयाद्दप्लोषणभीतस्य जलधेः शरणागतिलम्भाना
द्भगवत्सम्बन्धो ग्राहयितव्य इतिव्यज्यते, सुग्रीवस्यापि, नच
संकुचितःपन्थायेनवाली हतोगतः॥ समयेतिष्ठ सुग्रीव मा

वालिपथ मन्वगाः, इत्युक्तरीत्या नानाप्रकारेण भर्त्सनपूर्वकं भगवत्सम्बन्धापादनाद्येनकेनापि प्रकारेणामहताप्रयासेनापिभ ध्यस्थानाभ्युज्जीवनोपायभूतो भगवत्सम्बन्धः कार्य्यइति ध्वन्यते । तदा सुग्रीवस्य क्षेमार्थं भर्त्सनादिपूर्वकं भगवत्स म्बन्धे विहितेऽपि तस्य स्वतो भगवन्निमित्त्वेन भागवततया तद्भर्त्सनं भागवतापचार इत्यवगत्य पश्चाल्लक्ष्मणेन' 'यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वारामस्य भाषितम् ॥ मयात्वं परुषाण्युक्त स्तच्चत्वंक्षन्तुमर्हसीत्युक्तरीत्या क्षमाप्रार्थनाद्भगवत्सम्बन्धा पादनकाले दग्धपटसादृश्यापादनसमर्थभागवतापचारसंभवे तस्यक्षमापणेनैवनिवृत्तिर्विधेयेत्युत्तरवृत्तान्तोऽप्य त्राभिसंहितः११

(भाषार्थ,श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासेहीबढ़ाहै विभव जिसकाऐसे अतिगर्व युक्त सुग्रीव और उनके पूर्वजोंसे (अर्थात् सगरा त्मजोंसे ; अभिवृद्ध समुद्र जब चार महीने (सुग्रीवने जो प्रतिज्ञा १ की थी और वर्षा ऋतु के २) व्यतीत होने पर भी जब सुग्रीव और सागर ने अपने कर्तव्य को नहीं समझा तब सामदामाद्युपायोंसे ३ दमन करकेजिन्होंने श्रीरामचन्द्र जी के शरणमें सुग्रीव और समुद्र को प्राप्त किया उन श्रीलक्ष्मणजी के शरण में प्राप्त हैं—

टिप्पणी—१ सत्यं तेप्रतिजानामित्यजशोकमरिन्दम, करिष्या मितथायत्नंयथाप्राप्स्यसिमैथिलीम् ॥ वा०रा०कि०-काँ०७सर्ग-

२ समासाँश्चतुरः कृत्वा प्रमाणं प्लवगेश्वरः, व्यतीताँस्तान्

मदव्यग्रोविरहान्नावबुध्यते,तारांप्रतिलक्ष्मणस्योक्तिः, ३३सर्ग ३ नच संकुचितः पन्थायेनवाली हतोगतः, समयेतिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथ मन्वगाः--३४सर्ग--सुग्रीवंप्रतिलक्ष्मणवाक्यम्, (भावार्थ) जिस समय बालिके भयसे कन्दमूल खाकर समय बितातेहुए सुग्रीवका श्रीरामचन्द्रजीके साथ समागम हुआ उस समय सुग्रीवने अग्निको साक्षी देकर यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि आप मेरे इस महान् दुःख को दूर करेंगे तो मैं तनमन धनसे आजन्म आपकी सहायता करूँगा इस हेतु रामचन्द्र जी ने बालि का वध कर सुग्रीव को राज्य पदमें स्थापित किया यही सुग्रीव और रामचन्द्रजीके मध्य मैत्रीका तथा सुग्रीवके राज्यपद प्राप्तिका सूक्ष्म वृत्तान्त है।

सगरनामक महाप्रतापशाली महाराजा ने निन्यान्नवे अश्वमेध यज्ञ करनेके बाद शतक्रतु होनेके लिए अश्वमेधीय घोड़े को छोड़ा, जिसको भयभीत होकर इन्द्रने कपिल मुनिके आश्रम में बांध दिया। साठ हजार सगरके लड़कोंने चारों तरफ उस अश्वको खोजते हुए जब कहीं नहीं पाया तब पृथ्वी को खन डाला और पाताल में जाकर महर्षिके क्रोधाग्नि से भस्म हो गए, महाराजा सगर श्रीरामचन्द्रजीके पूर्वजोंमें से एक प्रतापी महाराजा थे, उन्हीं के पुत्रों द्वारा समुद्र की अभिवृद्धि हुई और सागर नाम पड़ा, यही समुद्र के अभिवृद्धि का सूक्ष्म वृत्तान्त है।

शराद्भ्रातुर्वीर्यस्मरणनिशिताद्भावशिथमघं,
जितेन्द्रं ब्रह्मास्त्रोर्जितमपि दशास्यानुजकृते ।
प्रमथ्नन्तं सेनां रवितनुजनाथां समवधीत्,
प्रपद्येश्रीमन्तं, कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥१२॥

(अन्वयः भ्रातुर्वीर्य्यस्मरणनिशितात्, शरात्,अघं जितेन्द्रं, ब्रह्मास्त्रोर्जितमपि, रवितनुजनाथां सेनां प्रमथ्नन्तं, रावणिं दशास्यानुजकृते, (यः) समवधीत्, तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये–

(व्याख्या भ्रातुःश्रीरामस्यवीर्यं पराक्रमस्तस्यस्मरणमनुसन्धानन्तेन निशितात्तीक्ष्णीकृतात्, शराद्बाणात्, अघंपापिनम्, (पापरूपमितियावत्) जितः स्वाधीनीकृतइन्द्रः पाकशासनोयेनतम्, (इन्द्रजयेनात्रसर्वदिक्पालजयः सूच्यते तन्मुख्यत्वादितिभावः) ब्रह्मास्त्रेण विरिञ्चिदत्तायुधविशेषेणोर्ज्जितं बलवत्तरम्, अपि, रवेस्सूर्य्यस्य तनुजः पुत्रः (सुग्रीवः) सएव नाथोनायकोयस्याः सातास्, सेनांचमूम्, ध्वजिनीवाहिनीसेना पृतनाऽनीकिनीचमूरितिकोषः, प्रमथ्नन्तं पीडयन्तम्, रावणिं रावणात्मजम्, (मेघनादम्) दशास्यस्य रावणस्यानुजोभ्राता (विभीषणः)तस्यकृतेतदर्थमित्यर्थः,यःश्रीलक्ष्मणमुनिः, समवधीन्मारयामास, तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये –

तदेवं भागवतेषु भगवत्प्रतिकूलेषूदासीनेषुच प्रपन्नानां शास्त्रानुमताचार्य्यादिभिरुपदिष्टाच वृत्तिः श्रीलक्ष्मणस्याचरणेन सदृष्टान्तं समीच्या पद्धत्या प्रत्यपादि । तत्रप्रतिकूलनि

रसनविषयेप्रपन्नै स्तन्मारणादिकं नविधेयन्निषिद्धत्वात् । किन्तर्हि, परावरतत्वयाथात्म्यवेदिनौपनिषदगहनार्थकांतार महाजाङ्घिकेन तत्सिद्धब्रह्मबोधद्युमणिरुचितमस्तोमकल्पा अन्यजल्पतूला, दिक्सौधावद्धजैत्रध्वजपटप्रस्पर्द्धि गुरुवरप्रणीत प्रवन्धप्रकाशितयुक्तिभङ्ग्यामाञ्जसाहाय्येन तत्तत्परिषत्सुसाटो पतर्कच्छटाशस्त्राशस्त्रिविहारसंभृतरणास्वादे वादे मुक्तिसौध विशिखासोपानपंक्तिविराजमानवैशम्पायनशौनकप्रभृतिभिः सशिरस्कंपमभिनन्दनीयानांविजातीयानास्वाद्यसिद्धीस्तन्यस दृक्तसदर्थनिकुरम्बकरम्बितानां सत्संप्रदायसंवन्धबन्धुराणां प्रव न्धानां प्रणयनेनच निरासनीया इत्येषैव प्रतिकूलनिरासपद्ध तिराचार्य्यवर्य्यचरणसञ्चरणसंचुरणेत्यषडक्षीणन्नैतत् । एता दृशपरमतनिरासश्चबहुमुखं स्वसिद्धान्तप्रकाशायसम्पनीपद्यत इत्याचार्य्यैरादृियते, तत्र ' गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः । स्मशाने जायते वृक्षः कंकगृध्रोपसेवितः' इतिवचनेन ब्राह्मणानां परमतस्थानां वादेन विजयस्यानिष्टसाधनत्वागमा त्तेषाञ्च बहुज्ञानां 'पापिष्ठा वादवर्य्येण मोहयन्त्यविचक्षणान्' इत्युक्तरीत्याकुतर्कनिवहैर्जगद्व्यामोहमातन्वानानांदुर्जयत्वाच्च कथमिवजयः शक्यआशंसितुमिति शंकां श्रीलक्ष्मणेन्द्रजिद्वि जयप्रस्तावापदेशेनपरिहरन्ति । तत्र 'नविगृह्य कथां कुर्या दिति निषेधे सत्यपि 'यथाशक्ति निगृहणीद्दे्वतागुरुनिन्दका निति प्रतिप्रसवदर्शनेनगुरुंहुंकृत्येत्यस्यदेवतागुरुनिन्दकव्यतिरिक्त

विषयतया व्यवस्थापनेनैतेषां कुदृष्टीनां जयेन न कोऽपिदोषः प्रसज्यत इति, प्रमाणपरतन्त्राः प्रतियन्ति,तेषां निरासस्यसुसाधं कञ्चिदुपायंप्रकाशयन्ति शरादूभ्रातुरित्यादिना । तत्र हनूमद्बन्धनसमर्थब्रह्मास्त्रलब्धसत्वं त्रिलोकनाथमहेन्द्रजयेनान्वर्थितेन्द्रजिन्नामानं समरेषु दुर्जयंमेघनादं भगवाञ्छ्रीसौमित्रि 'धर्मात्मासत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ॥ पौरुषेचाप्रतिद्वन्द्वःशरैनं जहि रावणिम्' इत्युक्तरीत्या भगवतो लोकोत्तरंवीर्यं स्मृत्वा तेनशपथं विधायऽतदेकान्तमना भगवत्करुणापरिवृंहितप्रभाव एकेनैव शरेण नामशेषता मनैषीत् । तद्वत्तत्तन्मतस्थापन हेवाकप्रथमानहैतुककथाकल्लोलकोलाहलमुखरितदिगन्तराला दुर्जया विमतस्था लक्ष्मीनाथसमारम्भमहाचार्यपंक्त्यनुसन्धानपरै र्नाथजुष्टश्रुतियुवतिशिरोभूषणायमानभाषणै,र्विष्वग्वैघव्यघट्टोत्मथनपटुधीभि रुपनिषदगदंकारवाग्भिः प्रवाग्भिः परमैकान्तिभिः सुनिरसा इति गुरुपरम्परानुसन्धानमुपायतया व्यज्यते । जितेन्द्र' ब्रह्मास्त्रोर्जित मित्यनेन बहुविधदुर्निवार कुतर्कनिवहनिबिडितमतास्थायुक्तया दुर्जयता दन्ध्वन्यते । अर्घामत्यनेन 'तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्' इति सूत्रोक्तन्यायेनाघपरिपूर्णत्वप्रतीत्या, "पापिष्ठा वादवर्षेण मोहयन्त्यविचक्षणा" निति वचनोक्तं पापिष्ठत्व मनुस्मार्य्यते, भ्रातुर्वीर्य्यंस्मरण निशितादित्यनेन परमाचार्य्यभगवत्प्रवर्तिताचार्य्यवंशानुसन्धानमुपायतया व्यज्यते । प्रमथ्नन्तं सेनांरवि

तनुजनाथा मित्यनेनाश्रुतत्रय्यन्त सिद्धान्तानां निरपराधानां दैवप्रकृतीना मविचक्षणानां वादवर्षेण व्यामोहकानांविमत स्थाना माम्नायचर्चाकवचधृतिकनद्गोमुखद्वीपिनां चावश्यनि राकरणीयता ध्वन्यते । तदेवंक्षुद्रक्षोभार्हतकौदितकुहककथाव णीदुर्नाटकप्रवर्तकानांदुर्जयानामपिविमतस्थानामाचार्य्यकृपया लीलयैवनिरासः सुशक इति प्रत्यपादीतिसिद्धम् ॥

(भाषार्थ) श्रीरामचन्द्रजी के पराक्रमके स्मरणसे तीक्ष्ण किये गए शरसे (कई वार संग्राममें जब मेघनाद जीता ही रह गया तब श्री लक्ष्मणजीने यह प्रतिज्ञा की यदि श्री रामचन्द्रजी धर्मात्मा हैं सत्य भाषण करने वाले हैं पराक्रम में अद्वितीय हैं तो यह मेरा बाण इस इन्द्रजित् मेघनाद का नाश करे ऐसा कह कर एकही बाणसे मेघनादको यमपुर का अतिथि बना दिया) पापी (ब्यर्थही कन्दमूल फल खाने वाले मुनियों को कष्ट देने वाला) इन्द्र को भी जीतने वाला ब्रह्मास्त्रसे बढ़ा है पराक्रम जिसका सुग्रीव है अधिपति जिसके ऐसी सेनाको पीड़ित करने वाले मेघनाद को विभीषणके लिए जिन्होंने मारा ऐसे श्रीलक्ष्मणजीके शरण में प्राप्त हैं।

सदासाधुत्राणप्रसितमतिनादाशरथिना,
विनिक्षिप्तांगुर्वीं सकलजनतापालनधुराम् ।
प्रजानांवा राज्ञोरुचिमभिलषन् सन्निरवहत्,
प्रपद्येश्रीमन्तं,कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥१३॥

(अन्वयः) सदासाधुत्राणप्रसितमतिना दाशरथिना विनिहि-
ताँ गुर्वीं सकलजनतापालनधुरां प्रजानां राज्ञः,वा रुचिम्,
अभिलषन् सन् (यः) निरवहत् तं श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये।
(व्याख्या) सदा सर्वदा साधुत्राणे साधुसंरक्षणेप्रसितात
त्वरा मतिर्बुद्धिर्यस्यतेन, दाशरथिना श्रीरामचन्द्रेण, विनि
हितांनिहिताम्, गुर्वीं महतीम्,सकला सम्पूर्णा या जनता जनस-
मूह स्तस्याः पालनस्य संरक्षणस्य धूर्भारस्तान्तथोक्ताम्, प्रजानाँ
जनानाम्,राज्ञोऽवनिपस्य,वा,रुचिमभिप्रायम्,अभिलषन्कामय
मानः सन्यःश्रीलक्ष्मणः, निरवहत्सम्पादयामासतंश्रीलक्ष्मण
मुनिं प्रपद्ये, यद्यपि, नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतांयातिलोके जनपद
हित कर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः॥ इति महति विरोधेवर्तमाने
समाने नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्य्यकर्त्तेतिश्लोकोक्त
रीत्या प्रजानाँ राज्ञोवाऽनुकूलकार्य्यकर्तुरत्यन्ताभावोऽत्रप्र
सिद्ध एव, तथाप्ययं श्रीलक्ष्मण उभयोरपि मनो रञ्जक आ-
सीदित्यस्य लोकोत्तरं कार्य्यकर्तृत्वंध्वन्यते—

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवमुदासीनानां साधूनामुपदेशादिना भगवदाभिमुख्यं
विधेयमिति निरूपितम्। तत्राचार्य्यत्वेनावस्थाय यथावस्थित
तत्वप्रदर्शनेन तेषांपालन मपि "गुरुरसिगतिश्चासिजगताम्,
इत्युक्तरीत्या परमाचार्य्यस्य भगवतः कृपयैव सम्पन्नम्, तथा
तत्प्रीतये लोकानामुद्धरणार्थं च तत्प्रयोज्यकर्त्रा क्रियते इत्य

नुसन्धानपूर्वकं स्वार्थकर्तृत्वस्वार्थभोक्तृत्वस्वाधीनकर्तृत्वस्वा धीनभोक्तृत्वरूपतृणाच्छन्नकूपनिपात मन्तरा सावधानैः कर्तव्य मिति भगवद्दत्त राज्यनिर्वाहकस्य तत्प्रसादैकफलस्य श्रीलक्ष्मण स्य वृत्तान्तेन प्रतिपाद्यते सदासाधुत्राणे त्यादिना पद्येन, तत्र पूर्वार्द्धेन सकलसाधुजनसंरक्षणार्थमेव विष्वक्सेनपराङ्कुशप्रभृ तिभक्ताग्रेसरैरुपदेशद्वारेणभगवता श्रीसंप्रदायस्य-वर्तना दासुरप्रकृतिसंमोहनार्थप्रवर्तितबौद्धमतसादृश्यसंभावनायाःसुदू रापोढत्वा त्तन्मतप्रवर्तनंस्वस्यापि न दोषमाकर्षयति, यावता परहितनिरतपरमपुरुषप्रवर्तितसत्संप्रदायाभिवर्द्धनात्तस्यनिरु स्सादप्रसादप्राग्भारमेवसंपादयेदिति व्यज्यते । सकलजनता पालनधुरामित्यनेन 'पशुर्मनुष्यः पक्षी वा येच वैष्णवसंश्रयाः, तेनैवते प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमंपदम्' इत्युक्तरीत्या श्रीसं प्रदाय एव सर्वाधिकारप्रपत्तिनिर्धारणं कृतमितिव्यज्यते । प्रजा नाँ वा राज्ञो रुचि मभिलषन्सन्निरवहदित्यनेन, आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च प्रीणिता भवन्तीति न्यायेनैतादृशाचार्यक करणेनान्तेवासिनां दुर्ग्रहतत्वविज्ञानेन तादात्विकप्रीत्युत्पत्तिक्र मेण भक्तिप्रपत्त्यन्यतरभगवद्वशीकरणावलम्बनेन निःसीमब्र ह्मतत्वानुभवमहानन्दरूपायाः मुक्तेः सिद्धि भगवतः प्रसाद श्च जायत इति सर्वफलसंपत्या'क्लेशः फलेनहि पुनर्नवतां विधत्त' इतिरीत्या संकीर्त्यत इति सिद्धम् ॥ १३ ॥

(भाषार्थ) सर्वदा साधुओंके रक्षामे तत्पर श्री रामचन्द्रजी

से दिये हुए सम्पूर्ण जनताके पालन रूप महान्भारको राजा और प्रजाके अनुकूल जिन्होंने सम्पन्न किया ऐसे श्री लक्ष्मण जी के शरण मे प्राप्त हैं--

इतःपरंपञ्चभिःश्लोकै र्बलभद्ररूपेणावतीर्णस्य श्रीलक्ष्मणस्य श्रीमद्भागवतान्तर्हितं यशोवर्णयति--

वयस्यानां लीलासहनदहनव्याकुलहृदः--
प्रलम्बादीन्हत्वा द्विविदखरदुर्मुष्टिकशलान् ।
सुहृत्क्रीडादानाद्धृत ललितरामाह्वयगुणं--
प्रपद्येश्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥१४॥

(अन्वयः) वयस्यानाम्, लीलाऽसहनदहनव्याकुलहृदः, प्रलम्बादीन्, द्विविदखरदुर्मुष्टिकशलान्,हत्वा, (ततः) सुहृत्क्रीडा दानात्, धृतललितरामाह्वयगुणम्, श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये, (व्याख्या) वयस्यानाँ सवयसाम्, (वयस्यःस्निग्धः सवया इत्यमरः) लीलाक्रीडातस्या असहनममर्षणंतदेव दहनोवन्हिः तेनव्याकुलमुद्विग्नं हृदयंस्वान्तंयेषाँ तान्तथोक्तान् (पद्दन्नोमास इतिहृदयस्यहृदादेशः)(चित्तंतुचेतोहृदयं स्वान्तं हृन्मानसंमनइत्यमरः) प्रलम्बस्तन्नामकोदैत्य आदिर्येषाँ तान् द्विविदश्च खरश्चदुर्मुष्टिकश्च शलश्चतेतान्, एतन्नामकदैत्यान्, हत्वाविनाश्य, सुहृदाँमित्राणाँ क्रीडाविलासः तस्या दानात्वितरणात्, धृतोगृहीतोललितोमनोहरो रामस्याह्वय आख्यागुणश्चयेनतम्, (सुहृदोरमयन् गुणैरितिभागवतोक्तेः)

(रामेतिलोकरमणाद्दलं बलवदुच्छ्रयादित्याद्युक्तेश्च) एवंभूतं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये इतिपूर्ववत्

(टी.)तदेवं लक्ष्मणावतारचरितं तेनप्रपन्नानाँ शास्त्रार्थव्यञ्जनञ्च प्रतिपाद्येदानीं बलभद्रावतारं प्रस्तुवन्ति । तत्र "परित्राणाय साधूनाँविनाशायच दुष्कृताम् ॥ धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे" इत्युक्तरीत्यावतारफलानां कथनेनावतारसाफल्यंतथा रामशब्दस्यान्वर्थताञ्च प्रथमंद्रढयन्ति वयस्यानामित्यादिना । तत्र पूर्वार्द्धेन दुष्कृद्विनाशनं कथ्यते । वयस्यानां लीलाया अमर्षणेनतेषा मकारणवैरित्वं ध्वन्यते । उत्तरपादेन "सुहृदो रमयन्गुणै"रित्युक्तरीत्या सुहृदाँसाधूना मानन्दप्रदाना त्साधुपरित्राणंनाम्नो याथार्थ्यञ्चव्यज्यते । साधुपरित्राणदुष्कृद्विनाशाभ्यां नान्तरीयकं धर्मसंस्थापनमप्युपलक्षितं भवति, अत्र तत्तदसुराणां विनाशनवृत्तान्तो भागवतमहोदधि साँयात्रिकैः स्वयमेव बिभावनीयइति विस्तरभयान्नलिख्यते ॥१४॥

(भाषार्थ)समान अवस्थावालोंके खेलकी असहिष्णुता रूप अग्नि से व्याकुल हृदय वाले द्विविदखर दुमुष्टिक शलऔर प्रलम्बादिकोंको मारकर मित्रोंके खेलका दान देकर राम (लोक को प्रसन्न करने वाली) इस सुन्दर पदवी तथागुणको जिन्होंने धारणकियाहै उन श्रीलक्ष्मणजीके शरणमे प्राप्तहैं—

प्रथमोऽनन्तरूपश्च इत्यादि वाक्योंसे बलभद्रजी का अवतार लक्ष्मणजी का ही था—

विचिन्वन्तींश्रेष्ठंदयित मवशिष्टंप्रलयतः—
ककुद्मीस्वांपुत्रीं शुचिजलजजन्मानुमतितः।
समर्प्यैवंयस्मै स्वयमपि चिरायुष्ट्वमजयत्—
प्रपद्येश्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥१५॥

(अन्वयः) ककुद्मी,प्रलयतः, अवशिष्टंश्रेष्ठं दयितंविचि-न्वन्तीं स्वांपुत्रीं शुचिजलजजन्मानुमतितः, यस्मै (बलरामाय) एवंसमर्प्य स्वयमपिचिरायुष्ट्वम्, अजयत्, तं श्रीलक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये—

(व्याख्या) ककुद्मीककुद्मिनामाऽवनिपः, प्रलयतः सर्वसंहार-कालात्, अवशिष्टमुर्वरितम्, श्रेष्ठमतिशोभनम्, (श्रेयान्श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात्सत्तमश्चातिशोभन इतिकोषः) दयितंवल्लभम्, (दयितंवल्लभंप्रियमित्यमरः) बिचिन्वन्तीमन्वेषयन्तीम्, स्वाँनिजाम्, पुत्रींतनयाम्, शुचिपवित्रंयज्जलजं कमलं तस्माज्जन्मोत्पत्तिर्यस्यविधेः तस्यानुमतितआदेशात्, यस्मैव-लरामाय, एवंसमर्प्यदत्वा, स्वयमपिस्वतः, (ककुद्मिभूपोऽपि,) चिरायुष्ट्वं दीर्घजीवित्वम् अजयत्जितवान्, तं श्रीलक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये—

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेव मवतारसाफल्यं रामशब्दस्यान्वर्थताञ्च प्रतिपाद्य दानीं "पत्रंपुष्पंफलंतोयं योमेभक्त्याप्रयच्छति ॥ तदहंभक्त्युपहृत मश्नामिप्रयतात्मनः" इत्युक्तरीत्या साधारणपदार्थानां भक्त्या

भगवतेसमर्पणेऽपितत्प्रसन्नेन भगवता जन्मजरामरणादिवि-
मुक्तिः क्रियतइतीममर्थं ककुद्मिपुत्रीप्रदानवृत्तान्तेन व्यञ्जयन्ति
"विचिन्वन्ती मित्यादिना"। तत्र पूर्वार्द्धेन स्वपुत्र्याअनुरूप
दयितान्वेषणपूर्वकं बलभद्रएवानुरूप इति निर्णयस्य कथनेन
नानाविधासु देवतासु भगवान्नारायण एव स्वाधीनाशेषसत्ता
स्थितियतनफलतया निरुपाधिकस्वामित्वेनच परदेवतेति
परदेवतापारमार्थ्यज्ञानं व्यञ्जितम्। शुचिजलजजन्मानुमतित
इत्यनेनायोनिजत्वेन निर्दोषेण परमेष्ठिनादत्तानुमतेः कथना-
त्सर्वेष्वपि भगवत्कैंकर्य्येषु स्वार्थकर्तृत्वादिदोषदविष्ठभाग-
वतानुमतिरावश्यिकेति व्यज्यते। तृतीयपादेन फलनिर्देशः
क्रियते। तत्रामृतत्वरूपचिरायुष्ट्वकथनेन तमेवंविद्वानमृत
इहभवतीत्यवयवार्थं पौष्कल्योपेतमुक्तिः परमात्मार्चनफल
मिति व्यज्यते—

(भाषार्थ) प्रलयमे भी नष्ट न होने वाले श्रेष्ठ पति का
अन्वेषण करने वाली जो अपनी कन्याहै उसको (ककुद्मि-
नामक राजा) ब्रह्मा की आज्ञा से जिन बलभद्रजी को देकर
ककुद्मी भी दीर्घ जीवित्व को प्राप्त हुआ ऐसे श्रीलक्ष्मणजी
के शरण मे प्राप्त हैं—

(भावार्थ) ककुद्मीकी कन्या रेवती ऐसा वर चाहती थी जो
प्रलय मे भी नष्ट न हो अतः ककुद्मी उसको लेकर सम्मति
लेनेके लिए ब्रह्मा के समीप गये उस समय वहाँ नृत्य गीत

हो रहा था इससे अनुचित समझकर राजाने सभा विसर्जन होने पर ब्रह्मासे निवेदन किया उन्होंने कहा इस समय अवनि मण्डल में तुम्हारे सामने के राजा नही हैं क्योंकि इतनी देर में तो वहाँ कई युग ब्यतीत हो गए इस समय तुम्हारे मनके अनुकूल वर बलभद्रजी हैं उनसे विवाह करो

(संकर्षणशब्दार्थमाह)

हितोक्तिंनाशृण्वन् पुरुनृपतयो गर्वमतयो,
विधित्सन्नन्वर्थं बुधसदसिसंकर्षणपदम् ।
कुरूणां वृष्णीनां प्रणयमकरोद्धास्तिनपुरे,
प्रपद्येश्रीमन्तं, कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम्॥१६॥

(अन्वयः) गर्वमतयःपुरुनृपतयः, (यदा) हितोक्तिं न, अशृण्वन्, (तदा) बुधसदसि, संकर्षणपदम् अन्वर्थं विधित्सन्, (यः) हास्तिनपुरे, कुरूणां वृष्णीनाम्, प्रणयम्, अकरोत्, (तं) श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये–

(ब्याख्या) गर्वेमतिर्येषाँ ते गर्वमतयोऽहंकारबुद्धयः, पुरुनृपतयः पुरुवन्शीयराजानोऽखिलराजाश्च,यदा यस्मिन्काले, हितोक्ति मनुकूलवाक्यम्, नाशृण्वन्नाकर्णयन्,तदा बुधसदसि विद्वत्समितौ,संकर्षणपदं संकर्षणेतिनाम, अन्वर्थं सम्यक्कर्षति नगरंभक्तचेतान्सिचेतिव्युत्पत्तिलभ्यार्थम्, विधित्सन्विधातुमिच्छन्, विपूर्वकात्सन्नन्तादडुधाञ्धातोःशतृप्रत्ययः, (यः श्रीलक्ष्मणः) हास्तिनपुरे दुर्योधनराजधान्याम्, कुरूणाँ

कुरुवंशिनाम्, वृष्णीनाँवृष्णिकुलोद्भवानाम्,प्रणायऽम, (प्र णायास्त्वमीविश्रम्भयाञ्चापू माया इतिकोषः) अकरोत्कृतवा न्, तं श्री लक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये-

(तात्पर्यं विवरणम्)

तदेवंककुद्मिवृत्तान्तेनभगवत्कैङ्कर्यस्य मुक्तिफलकर्ताँ प्रति पाद्यकथानुक्रमेण स्रोतस्विन्याँ दुर्योधन राजधान्या आकर्षणे नतेनभयोत्पादनपूर्वकंतेषाँचित्ताकर्षणेनतेन सम्बन्धस्थेमा कर्षणेन सङ्कर्षणनाम्नोऽपियथार्थतां प्रथयन्तस्तेनच हठादपि परमपुरुषार्थकाष्ठाभूतभागवतसम्बन्धापादनावश्यकताँव्य ञ्जयन्तोनिबध्नन्तिहितोक्तिमिति । प्रथमपादेन सामोपाय प्रयोगस्तद्वैतत्थ्यंच कथ्यते, तेन भागवतसम्बन्धापादनमपि साम्नैवविधेयम् । तद्वैतत्थ्ये सत्येवोपायान्तरपरिग्रहोयुक्त इति व्यज्यते । हितोक्ति मित्यनेनास्या हितोक्तेरनादरेभाव्य नर्थावश्यं भाविता व्यज्यते, गर्वमतयः इत्यनेनपित्तोपहतस्य क्षीर मिवस्वदोषादेव तेषामहृद्यमासीत् नतूपदेशे तत्कर्त्तरिवा विन्दुमात्रोऽपिदोष इति व्यज्यते, द्वितीय पादेन विह्वलभायाँ सर्वविद्वदभिनन्दनीयरीत्या योगार्थानुष्ठानेन नाम्नोऽन्वर्थं ताकरणस्यायमेवावसर इति प्राप्तकालता व्यज्यते, तृतीय पादेन श्रीकृष्णसम्बन्धेन लब्धभागवतत्व काष्ठैर्वृष्णिभि स्सह प्रणय सम्पादनेन भागवतसम्बन्धोविधेय इति ध्वन्यते

(भाषार्थ) अहंकारी पुरुवंशी महाराजाओं ने जब बलभ

द्रके हित वाक्योंको नही सुना तब विद्वानोंके सभामें अपने नाम को (सम्यक् कर्षतीति संकर्षणः इस व्युत्पत्ति लभ्य संकर्षण शब्दके अर्थ को) यथार्थ करने की अभिलाषासे जिन्होंने हस्तिनापुर में कुरु वंशिओं और वृष्णिओंका मेल किया ऐसे लक्ष्मणजीके शरण मे प्राप्त हैं।

(भावार्थ) दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाके स्वयम्बरमे श्रीकृष्ण जीके पुत्र साम्बभी गए थे, जब लक्ष्मणा जयमाला लेकर स्वयम्बरमे आई तब साम्ब उसको रथपर चढ़ाकर अपने नगरकी ओर चल दिए इस पर स्वयम्बरस्थ राजाओंने अप ना अपमान समझ कर उनको पकड़कर कारागृहमे डाल दिया, जब यह समाचार द्वारिका पहुंचा तब बलभद्रजी क्रोध युक्त आती हुई अपनी सेनाको रोक कर अकेले आए और पुरुबंशी राजाओंसे साम्बको छोड़नेके लिए कहा। किन्तु उत्तर मे उनसे अपमान १ सूचक बचन सुन कर बहुत क्रोधित हुए, और हलसे हस्तिनापुरको गङ्गामे डुबा देना चाहा तब भय भीत पुरुबंशियोंके प्रार्थना करने पर तथा लक्ष्मणा सहित साम्बको देदेने पर मेल कर लिया।

यदाधर्ममूढानसुखमबुधन् भारतभटाः,
सुमर्तुं सन्नद्धाः कुटिलकलिदुर्य्योधनवशात्।
प्रियद्रोहाद्भीरुस्सहजकरुण स्तीर्थमचरत्,

१ टिप्पणी आरु रुहत्युपानद्वैशिरो मुकुट भूषितम्—इत्यादि

प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥ १७॥

(अन्वयः) कुटिलकलिदुर्य्योधनवशात् मूढाः सुमर्तुं सन्नद्धाः भारतभटाः, यदा धर्मे सुखं न अबुधन्, तदा सहजकरुणः प्रियद्रोहात् भीरुः, (यः) तीर्थं अचरत्, तं श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये—

(व्याख्या) कुटिलोवक्रः कलिः पापरूपो यो दुर्योधनस्तस्य वशादाधीन्यात्, मूढाअज्ञाः, (अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयवालिशा इति कोषः) सुमर्तुं पञ्चत्वंप्राप्तुम् सन्नद्धा स्तत्पराः, भारतभटाः भारतयोद्धारः यदा यस्मिन्काले, धर्मे सुकृतेयुधिष्ठिरेच, सुखमानन्दम् नाबुधन्नाजानन्, तदा तस्मिन्काले, सहजा स्वाभाविकी करुणा कृपायस्य सः, प्रियेभ्योद्रोहस्तस्मात् प्रियद्रोहात् सुहृद्विरोधात् भीरु र्भयशीलः, यः श्रीलक्ष्मणः, तीर्थं पुण्यक्षेत्रम्, अचरदभ्रमत्, तं श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये—

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवंसङ्कर्षणपदस्यान्वर्थतां तेन भागवतसम्बन्धस्य भगवत् सम्बन्धस्य चावश्यकार्य्यतां प्रतिपाद्यैवमनवरतमुपदेशे क्रियमाणेऽपिमोहमाहात्म्यादबुध्यमानानांमात्मद्रुहां बिषयेपि द्रोहं विहाय "आत्मद्रुह ममर्यादं मूढमुज्झितसत् पथम्, सुतरा मनुकम्पेत नरकार्चिष्मदिन्धनम्" इत्युक्तरीत्या नुकम्प्यतामसकृत्सन्धि विधित्सायामप्यसन्दधानानां मरणे

व्यवसितानां मात्मद्रुहां कौरवाणाँ विषये करुणां विधाय वलभद्रस्य तीर्थयात्राकरणवृत्तान्तेन व्यञ्जयन्ति यदा धर्मे इत्यादिना श्लोकेन, तत्र पूर्वार्धेनमहापापिष्ठदुर्योधननिर्वन्धेनसन्धिवार्तामनाकर्ण्य भटानां मरणे व्यवसायस्य धर्मे पुत्रे सुख हेतुतानवबोधस्यच कथनेन पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः, नष्टप्रज्ञः पापमेव पुनरारभते नरः इत्युक्तरीत्यास्वपापमाहात्म्यात्समीचीनोपदेशमनाकर्ण्य मन्दानन्दसन्दोहरूपमुक्ति मप्यनादृत्य जराम्मरणादि सन्तत संसार प्रवणता श्रीसिद्धान्तस्य परम सुख साधनता नववोधश्च व्यज्यते । तृतीय पादेन प्रियद्रोहं विहाय सहज कारुण्येन तीर्थयात्राचरणस्यवर्णनेन श्रीलक्ष्मणस्य निरुपाधिककारुण्यं परद्रोह गन्धशून्यत्वंच व्यज्यते तेन तादृश पापिष्ठात्मद्रोहिविषये सुतरामनुकम्पेतेति बचनानुसारे णानुकम्पावश्यकार्य्येति ध्वन्यते ।

(भाषार्थ) दुष्ट कलि रूपी दुर्योधनके वश होनेसे जब मरने को उद्यत मूर्ख भारत भटोंने धर्ममे (युधिष्ठिर और धर्माचरण) कल्याण नहीं समझा तब बन्धुओंका आपस मे विरोध न देख सकने वाले परम कारुणिक जो बलभद्रजी तीर्थोंमे पर्य्यटन करने के लिये चले गए ऐसे श्री लक्ष्मण जीके शरण मे प्राप्त हैं ।

धनात् प्रायोऽनर्थोभवति विदुषामित्युपदिशन्,
उदासीनोऽयासीज्जनक मनुसत्राजितमणेः ।
गदायुद्धंस्वाध्यापयत धृतराष्ट्रात्मजमिह,
प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ।१८।

(अन्वयः) विदुषामपि प्रायः, धनात् अनर्थोभवति, इति, उपदिशन्, सत्राजितमणेः, उदासीनः, जनकम्, अनु, अयासीत्; (यः) इह, धृतराष्ट्रात्मजं गदायुद्धं स्वाध्यापयत, तं श्री लक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये--

(व्याख्या) विदुषाँ सुधियामपि, प्रायोबहुधा, धनाद्वित्तात् अनर्थोऽशुभम्, भवति जायते, इति पूर्वोक्तम्, उपदिशन् शिक्षयन्, सत्राजितस्य एतन्नामक नृपते र्मणेः सूर्य्यात्लब्ध रत्न विशेषस्तस्मादुदासीन स्तटस्थः जनकं तन्नामक नृपतिम्,अनुप्रति, अयासीदगमत् (यः श्रीलक्ष्मणः) इह जनक पुरे धृतराष्ट्रात्मजं दुर्योधनम्, गदायुद्धं गदासमरम्, स्वाध्यापयत अपीपठत, तं श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये--

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवं सर्वेष्वपि करुणावश्य कार्येति प्रख्याप्येदानीं सर्वेषामपि दोषाणा मर्थ आवरणय निवन्धनत्वात् तत्र वैराग्यं सत्राजितमणौ बलभद्रस्यानादरप्रदर्शनेनोपदिशन्तस्तत्कथानुसारेण तन्मणिप्रावरण्येन कृष्णस्य दोषास्पदता प्रथाञ्चज्ञ्य अयन्तो दुर्योधनस्य गदायुद्धशिक्षणेन धनुर्वेदाध्यापकत्वमपि

प्रति पादयन्ति धनादित्यादिना पद्येन। पूर्वार्धेन "बलवानि न्द्रियग्रामोविद्वांसमपि कर्षति" इत्युक्तानुसारेणवासनाबलात् धनलिप्सासम्भवस्य प्रदर्शनेन सावधानै र्महता प्रयासेनापि तादृशदोषस्यनिराकरणीयता ध्वन्यते। तृतीय पादेन धनु र्वेद शिक्षणं प्रतिपाद्यते धृतराष्ट्रात्मज मित्यनेन शिष्यस्यसत् कुलीनता ध्वन्यते ।

(भाषार्थ) धनसे विद्वानों को भी प्रायः अनर्थ हुआ करता है इसका उपदेश करते हुए सत्राजितके मणिसे उदासीन हो जनक पुर जाकर जिन्होंने दुर्योधनको गदायुद्धका अध्ययन कराया ऐसे श्रीलक्ष्मणजीके शरणमें प्राप्त हैं ।

(भावार्थ) सत्राजित नामक एक यादवने सूर्यके प्रसन्नार्थ महती तपस्या की,सूर्यने प्रसन्न होकर उसे स्यमन्तक मणि दिया,एक दिन वह उस मणिको लेकर उग्रसेन की सभामें गया, श्री कृष्णने उस मणिको राजा के योग्य समझ कर उससे मांगा किन्तु उस मणिको न देकर वह घर लौट आ या, एक दिन सत्राजितका भाई प्रसेन उस मणिको लेकर शिकार खेलने गया वहां एकान्त में सिंहने मार डाला और मणि जाम्ववन्तके हांथ लगी। भाईके मरनेका समाचार सुन कर सत्राजितने भाईके मरने तथा मणिके अपहरण करनेका दोष श्रीकृष्ण चन्द्रजीके शिर मढा, कलङ्क लगनेका समाचार सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रजी उस मणि को खोजनेके लिये बन

गए, वहाँ लड़ाईमें जाम्बवन्तको हरा कर उसकी कन्या जाम्बवती समेत मणिको लाए और सत्राजितको देकर सबहाल कह सुनाया, पश्चात् प्रसन्न होकर सत्राजितने वह मणि और अपनी कन्या श्रीकृष्णको समर्पित किया श्रीकृष्णचन्द्र जीने कन्याको ग्रहण कर मणिको अस्वीकार किया, परन्तु सत्राजितने उस कन्याको शतधन्वा को देने कहा था इस लिये शतधन्वा क्रोधित होकर सत्राजितको मार कर मणि उठा ले गया, इस समाचारको श्रीकृष्णचन्द्रजीने सुना और उसके मारनेका विचार किया, इस बातको सुन कर सत्राजित अक्रूर के समीप मणि छोड़कर भागा, श्री कृष्ण और बलराम ने उसका पीछा किया सौ योजन जाने पर वह श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया किन्तु मणि नमिली, मार कर लौटने पर सब समाचार (वृथाहतः शतधनुर्मणिस्तत्रनविद्यते) शतधन्वा वृथा ही मारा गया उसके समीप मणि नहीं है बलदेव जीको सुनाया इससे उनके मनमें शंका हुई कि यह हमसे छिपा रहे हैं इस कारण वे जनकपुर चले गए और वहीं दुर्योधन को गदा युद्ध सिखाया,

(इतः परं श्रीसिद्धान्तंदृढ़यति)

दुराशाहिग्रस्तासुरनृपशुदुर्वादजनितं,
वहिष्कार्य्यैर्वेदात् पतितकुमनीषै रुपचितम् ।
सरस्वत्या हार्दं ज्वरमशमयत् सूक्तिसुधया,

प्रपद्येश्रीमन्तंकृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥१६॥

(अन्वयः) दुराशाग्राहिग्रस्तासुरनृपशुदुर्वादजनितं वेदात्बहिष्कार्यैः पतितकुमनीषैरुपचितं सरस्वत्याः हार्दं ज्वरम् (यः) सूक्तिसुधया, प्रशमयत् तं श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये-

(व्याख्या) दुराशा दुराग्रह एवाहिःसर्पस्तेन ग्रस्तागृहीता येऽसुरा नृपशवश्च दनुजमनुजापसदा स्तेषां दुर्वादाः प्रकृष्ट कुतर्का स्तैर्जनित मुत्पादितम्, वेदात्श्रुतेर्बहिष्कार्यैः पृथक्करणीयैः (श्रुतिःस्त्रीवेदआम्नायइति कोषः) कुत्सिता मनीषायेषा न्ते कुमनीषाः पतिताश्चते कुमनीषाश्च तै स्तथोक्तै भ्रष्ट बुद्धिभिः, (कुदृष्टिभिरित्यर्थः) बुद्धिर्मनीषाधिषणेतिकोषः- द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैरितिज्ञापकात् पत्धातोःक्तप्रत्ययइडागमश्च-उपचितं समेधितम्,सरस्वत्या वाग्देवतायाः, हृदयास्यायं हार्दस्तंहार्दं मानसिकम्, स्वान्तं हृन्मानसंमनइत्यमरः , हार्दमित्यत्र तस्येद मित्यण्, हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेष्वितिहृदादेशः-ज्वरंजूर्तिम्, (अथज्वरेजूर्तिरितिकोषः) यः श्रीलक्ष्मणमुनिः,सुष्टूक्तिः सूक्तिस्सैव सुधात या सूक्तिसुधया सद्वचनपीयूषेण,प्रशमयच्छान्तिमनयत्, (त स्मैरामानुजायनमः परमयोगिने, यः श्रुतिस्मृतिसूत्राणाम न्तर्ज्वरमशीशमदित्यादिवचनादितिभावः) तंश्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये, शम्धातोर्णिच्यमन्तत्वाद्ध्रस्वे लङिरूपम्बोध्यम्-

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवं प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयोलक्ष्मणस्तथा । तृतीयोबलरामश्चकलौ रामानुजोमुनिः" इत्युक्तरीत्या नुक्रमेणादिशेष लक्ष्मणबलभद्राणामवतार कथाँ तैः कृतानामनन्यसुशकाना मुपकाराणां संग्रहञ्चदिङ्मात्रेण सूचयित्वेदानीं श्रीसिद्धान्ता चार्याणां भगवद्रामानुज पूज्य पादानां चरितं विस्तरेण प्रस्तोष्यन्तः परमतभङ्गञ्च तत्रतत्र व्यञ्जयन्तः प्रथमतो 'यावेद वाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः । सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हिताःस्मृताः" इतिभेषजायमानयत्किञ्चनोक्तेः मनोर्वचनानुसारेणाज्ञानिदानसमोगुणप्रसूतानां चार्वाक बौद्ध जैनप्रभृतिवेदवाह्य दर्शनानां तदनुसारि जैन बौद्ध गन्धि भेदाभेद वादि मृषा वादि कुदृष्टीनाञ्च सकल जगदुपप्लव प्रवृत्ततामुद्वीक्ष्य हार्द ज्वरास्कन्दितायाः सरस्वत्याः तस्मै रामानुजार्यायनमः परमयोगिने । यः श्रुतिस्मृति सूत्राणामन्तर्ज्वरमशीशमत्' इत्यनु सन्धान रीत्या भेदाभेद घटक श्रुत्यादीनाँ परस्पर बाध मन्तरा यथा वस्थि तार्थपरता बोधनेनान्तर्ज्वर मपाकृत्य 'प्रणामं लक्ष्मणमुनिः प्रतिगृह्णातु मामकं प्रसाधयति यत्सूक्तिः स्वाधीनपतिकां श्रुति'मित्युक्त रीत्या श्रुतेः श्रीमन्नारायण परताँ प्रति पाद्य श्रीमद्विशिष्टा द्वैत सिद्धान्त स्थापनेन भाष्य काराणा मवतार साफल्यंविव ध्नन्ति दुराशेत्यादिनापद्येन, तत्र प्रथम पादेन यथा वस्थित

सकल प्रमाणानुगुणमर्थमबुध्यमानैः दुराशावशं वदैराशुर प्रकृतिभि र्यथार्थज्ञान विरहेणपशु कल्पै वैभाषिक सौत्रान्तिक योगाचारमाध्यमिकाभिधानैः क्षणिकत्वज्ञानाकारानुमेयत्व बाह्यार्थ मिथ्यात्व सर्वशून्यत्व स्थापकै र्बौद्धै देहातिरिक्तात्म प्रत्यक्षातिरिक्त प्रमाण नास्तित्व,वादिभिर्लोकायत मतस्थैश्चार्वाकैरनेकान्त वादिभिर्देह समपरिमाणात्म वादिभिः परिहित गगनैः जैनैश्चकुतर्ककल्क कल्पितः सर्वार्थविप्लवः श्रुतिवैयाकुलीच यथार्थ प्रदर्शन प्रवृत्तायाःसरस्वत्याः ज्वर जनकत्वेन कथ्यते। एवं 'या वेद बाह्यास्मृतयः' इत्यभिहितानां बौद्ध बार्हस्पत्यार्हतागमानां स्वरूपं तेषां लोकव्यामोहन प्रकारञ्च निरूप्य,तदनुयायिनां प्रच्छन्नबौद्धानां प्रच्छन्न जैनानाञ्चवेदबहिष्कार्यत्वं पातित्यं कुदृष्टिताञ्चतत्प्रवर्तित वादैः ज्वरस्य समुद्दीपितताञ्च कथयन्तिबहिष्कार्यै रित्यादिना पादेन,कुमनीषै रित्यनेन कुदृष्टय इति प्रमाण बचनस्थंपदं स्मार्यते, बहिष्कार्यै र्वेदादित्यनेन प्रमाणबचनस्थवेदबाह्य शब्दस्योत्तरत्राप्यनुषङ्गःसूच्यते। अनुषङ्गाभावे' सर्वास्तानिष्फलाः प्रेत्यतमोनिष्ठाहिताःस्मृताः' इतिनैष्फल्य वर्णनं नसंजाघटीति, एतैरभिवर्धितस्य सरस्वतीहार्दज्वरस्यसूक्तिसुधासिद्धौषधेननिश्शेषनिवृत्तिः कथ्यते सरस्वत्याहार्दमित्यादिना। वेद बाह्य मतानां,कुदृष्टीनाञ्च जिज्ञासाधिकरण समन्वयाधिकरण तर्कपादादिषु विस्तरेणकृतो निरासः परिश्रम शालिभि

स्तत्रैव विभावनीय इतिन विस्तृणीमहे। यः श्रुति स्मृति सूत्राणामन्त ज्वरमशीशमत्" इति श्रीसूक्त्यनुसारेण श्रुति स्मृति सूत्राणामित्यनिर्दिश्य सरस्वत्या हार्दमिस्ति निर्दिशन्ता मयमाशयः यद्गुरुपरम्पराप्राप्तेयं कथानुसन्धेयेति। साचेयंक था लिख्यते, अथकदाचित् यादवप्रकाशस्य तैलाभ्यञ्जनं कुर्व ति श्रीभाष्यकारे तेनाभिहितं तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीक मेवमक्षिणी, इत्यस्याः श्रुते र्मर्कटजघन सदृशे भगवतोऽक्षि णी इत्यर्थं निशम्य शोकेनाचार्या अश्रु विन्दूनत्यजन्, तेच विन्दवो वह्निकणा इव तदूर्वोः निपत्य महतीं वेदनामजनय न्तेन समुद्विग्नो यादवप्रकाश आचार्यानप्राक्षीत्, केनहेतु ना तवायंशोकः समुत्पन्नइति तच्छ्रुत्वाआचार्याः श्रुतेःभव द्भिरभिहितस्यासमीचीनार्थस्य श्रवणेन भृशंदूय इतिप्रत्यवा दिषुः, सच कोवान्यःसमीचीनार्थ इत्यनु युयुजे, आचार्याश्च कंजलंपिबतीतिकपिस्सूर्यः, तेन आस्यते विकास्यत यितिक प्यासंपुण्डरीकं रविकरविकाशितं पद्मं, कमुदकं प्यासः आसन मुत्रवोयस्येति कप्यासंगम्भीराम्भस्सम्भूतं कं जलंपिबतीति कपिः नालं तस्मिन्नास आसनं यस्येति कप्यासं सुमृष्टनाल स्थितं पद्ममिति व्युत्पत्ति त्रयंप्रदर्श्यगम्भीराम्भस्सम्भूत सुमृ ष्टनालरविकर विकाशित पुण्डरीकदलामलायते भगवतो ऽक्षिणीति प्रत्यब्रुवन्,एतदर्थत्रयंश्रुत्वा यादवप्रकाशोऽपिव्री डावनमित वदनोबभूव, पश्चात् गुरूणा ममीषां दिग्विजय

यात्रायां सरस्वती पीठेसरस्वती पुनरपीद मर्थत्रयं पृष्ट्वाकर्ण्यं सन्तुष्ट मानसा भवस्त्वयीति भगवद्बादरायण ब्रह्मसूत्रभाष्य ग्रन्थस्य सम्यग्ज्ञान हेतुतया श्री भाष्य मिति नाम भवत्विस्य भिधायान्तर्दधे इति

(भाषार्थ) दुराग्रह रूपी सर्पसे ग्रसित राक्षस और नीच मानवोंके कुतर्क से उत्पन्न और वेदसे बहिष्कृत मानवोंसे पड़े हुए सरस्वतीके हार्दिक ज्वरको जिन्होंने अपने वागमृत से शान्त किया ऐसे श्री लक्ष्मणजीके शरण में प्राप्त हैं, प्रथमोऽनन्तरूपश्च इत्यादि वचनोंसे रामानुज स्वामीकाभी लक्ष्मणजी हीका अवतार था,

उपायान्कर्मादीन्धृतपवनचित्तै रसुलभान्,
जगन्मात्रप्राप्यंहरिचरणसेवं प्रपदनम् ।
समालोच्यस्वस्थापयत भुविरामानुजमतं,
प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥ २० ॥

(अन्वयः) धृतपवनचित्तैः असुलभान् कर्मादीन् उपायान् तथा जगन्मात्रप्राप्यं हरिचरणसेवम् प्रपदनम् समालोच्य, (यः) भुवि रामानुजमतम् स्वस्थापयत (तम्) श्री लक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये,

(व्याख्या) धृतं स्वाधीनीकृतं पवनं चित्तं च यैस्ते तैः जित मनःप्राणैः (योगिभिरित्यर्थः) असुलभान् अलभ्यान्कर्मा दीन् कर्मयोगज्ञानयोगभक्तियोगान्, उपायान् साधनानि,

जगन्मात्रेणाप्राप्यम् विश्वमात्रलभ्यम्, हरिचरणयोः सेवायेनतत् भगवत्पादशुश्रूषणम्, प्रपदनम् प्रपत्तिम्, च समालोच्य विचार्य्य,(यः)लक्ष्मणमुनिः भुवि पृथिव्याम्, रामानुजस्यमतम् परमवैदिकसनातनश्रीसिद्धान्तम्, स्वस्थापयत सम्यक् स्थापितवान्, तम् श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये—

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवं निखिल कौतस्कुत कुमति मत निराकरण पूर्वकं सरस्वती सम्माननीय सन्मत प्रवर्त्तकत्वं संग्रहेण निरूपितम्,इदानीं सम्यक् तत्वहित पुरुषार्थान् पर्यालोच्य तत्प्रदर्शनेन सन्मत स्थापकत्वंप्रतिपाद्यते उपायानित्यादिना । तत्रशमदमादि सम्पन्नैःयमनियमादियोगाङ्ग निर्वाहनिपुणैर्निर्वहणीयैस्साक्षात्परम्परयावामोक्ष साधनैः कर्मयोगज्ञानयोग भक्तियोगादिभिरिदानींतनानां वैदुष्य सामर्थ्य विरहितानां कृपणानांफलासिद्धेः लघूपाया निर्धारणे केवलतत्वहित पुरुषार्थ निरूपणं न फलायकल्प्येतेति लघूपाय निर्धारणं प्रस्तुवन्ति उपायानित्यादिना । तत्रपूर्वार्धेनपरमयोगिभिरपिदुस्साधत्वकथनेनेतरेषां विषये कैमुतिकताद्योत्यते,धृतपवन चित्तैरित्यनेन निगृहीत प्राणत्वं निगृहीत मनस्त्वंचोच्यते, बाह्येन्द्रियाणाँमनोऽधीनप्रवृत्तितया तेषामपिनिग्रहो व्यज्यते । कर्मादीनित्यादि शब्देनज्ञानयोग भक्तियोगौपरभक्तिपरज्ञानपरमभक्तिरूपास्तत्पर्व विशेषाश्च गृह्यन्ते । उपायत्वस्य मोक्षनिरूपितत्वा

ङ्गीकारे कर्मज्ञान योगयोः "कर्मज्ञानाख्ययोगौ स्विहपरभजना धिक्रियाश्चौ स्वदृष्ट्येस्युक्तरीत्या साक्षान्मोक्षोपायत्वा सम्भवे ऽपि परम्परया साधनत्वस्य विवक्षितत्वान्नदोषः । यद्वाभक्तेर्मोक्षोपायत्वं कर्मज्ञानयोगयोर्भक्ति निरूपितो पायस्व मिति वैरूप्येणतत्तत्फलनिरूपितोपायत्वाङ्गीकारान्नदोषः । पूर्व योजनाया मुपायत्वस्य साक्षात्परम्परा साधारण्यम् । उत्तर योजनायां निरूपकभेद इति विशेषो विभावनीयः, द्वितीयपादेन "पुंभिस्सिद्धाधिकारैः क्रतवइधनिराकांक्षभावं भजन्त्यः प्रोक्तास्त्रैवर्णिकार्हाः श्रुति नयवशतो यद्यपि ब्रह्मविद्याः । अस्तेयाद्यैः प्रपत्त्या परिचरणमुखै रप्यधीतैः स्वजातेः सर्वेऽपि प्राप्नुयुस्तांपर गतिमितितु ब्राह्मगीतादिसिद्धम् ॥ 'अर्थित्वेन समर्थता त्रिकतनुस्समपिण्डिताधिक्रियासाचाष्टाङ्ग षडङ्ग योग नियता वस्था व्यवस्थापिता, श्रौतीसर्वशरण्यता भगवतः स्मृत्यापि सत्यापिता सत्यादिष्विवनैगमेष्वधिकृतिः सर्वास्पदे सत्पथे 'शक्ता शक्तादि तत्तत्पुरुष विषयतः स्थाप्यते तद्व्यवस्थे' त्युक्तरीत्यौपनिषदविद्यानां त्रैवर्णिकाधिकारत्वेऽपिअशक्त विषयतया व्यवस्थित विकल्पस्य सर्वाधिकारस्य मूत्रमन्त्र लब्धसत्ताकैः करण मन्त्र (द्वयमन्त्र) निर्वहणीयस्य पार्थ सारथिमुखोद्गत चरमश्लोक विहितस्य मधुक्षीरन्यायस्वगुण विषया सञ्जन कनन् महानन्दब्रह्मानुभव परीवाह भगवत्कैङ्कर्य रूपपरम पुरुषार्थ साधनस्य प्रपदनस्य

निर्धारण वकं स्थापनं प्रस्तुवन्ति । जगन्मात्रप्राप्यमित्यनेन सत्यवदनादीनामिवास्यापि सर्वाधिकारकत्वं व्यज्यते । हरि चरणसेवामित्यनेन भगवत्कैङ्कर्यं रूपपरमपुरुषार्थहेतुत्व मुच्यते, प्रपदन मित्युपायनाम निर्देशः, हरिचरणसेवमित्यनेन यथाक्रतुरस्मिन् लोके पुरुषोभवति तथेतः प्रेत्यभवती'त्युप निष दुदीरित तत्क्रतुन्यायेन प्राप्यस्य भगवतएव प्रपदनविष यत्वंव्यन्यते तेनाशक्योद्देश्यकत्वएव रामानुष्ठित समुद्र शर णागति वदानर्थक्य सम्भवात् प्रकृते तदभावो व्यज्यते, तेन परतत्व निर्णयोऽपिसूच्यते,तदेवं तत्वहितपुरुषार्थ पर्यालोचन पूर्वकं स्वनाम भूषित मतस्यत्रिकाल सम्भावित दूषण निरा करण पूर्वकं स्थापनं तृतीय पादेन प्रति पाद्यते ।

(भावार्थ) कर्मादिक (कर्मयोग भक्ति योग प्रभृति) उपायोंको जितेन्द्रियोंसे भी दुःसाध्य और हरिचरण सेवारूपी प्रपत्तिको संसार मात्रमें सुसाध्य समझ कर जिन्होंने संसारमें रामानुज मतको स्थापित किया उन श्री लक्ष्मणजी के शरण में प्राप्त है ।

(अष्टाङ्गयोगंविनैव तत्वत्रयं प्रत्यक्षयति)

विधात्रादिस्तम्बावधिषु जडजीवाच्युतमयं,
गुणौर्जात्यानाम्ना निगमनुततत्वत्रय मिदम् ।
यदीयाच्छ्रीभाष्याज्जयति सुखवृद्ध्येसुमनसां,
प्रपद्ये श्रीमन्तं, कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥ २१ ॥

(अन्वयः) गुणैर्जात्यानाम्ना विधात्रादिस्तम्बावधिषु जड जीवाच्युतमयम्, इदं निगमनुततत्त्वत्रयम्, यदीयात्, श्रीभाष्यात् सुमनसां सुखबृद्ध्यैजयति तं श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये–

(व्याख्या) गुणै रूपादिभिः जात्या सामान्येन (जातिर्जातिञ्च सामान्य मितिकोषः) नाम्नाऽभिधया, विधाताचतुर्मुख आदिर्येषां तेचते स्तम्बावधयश्च तृणगुच्छप्रभृतयस्तेषु तथोक्तेषु, जडोऽचेतनो जीवश्चेतनोऽच्युतःपरमचेतनस्तेषां प्राचुर्यं यत्र (प्राचुर्येमयट्) इदमेतत्, निगमेनवेदेननुतंस्तुतञ्चतत्तत्वत्रयं चिदचिदीश्वरविशिष्टम्, (भोक्ताभोग्यंप्रेरितारञ्चमत्वेतिश्रुत्यनुसारेण निगमनुतत्वोक्तिः) (वणिक्पथःपुरंवेदोनिगमइतिकोषः) यदीयात्यस्य श्रीलक्ष्मणस्यसम्बन्धिनः श्रीभाष्यात् तत्प्रोक्तग्रन्थात्, अर्थात् 'प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयोलक्ष्मणस्तथा तृतीयोबलरामश्च कलौरामानुजोमुनिः,द्वापरान्तेकलेरादौपाषण्डप्रचुरेजने रामानुजेति भविता विष्णुधर्मप्रवर्तकः, आदौजगदाधारश्शेषस्तदनुसुमित्रानन्दनवेषस्तदुपरिधृतहलमुसलविशेषः श्रीरामानुजयतिपतिरेषः, इत्यादिवचनैः सएव रामानुजनाम्नाऽवतीर्य श्री भाष्यंरचयामासेति हेतोर्यदीयात् श्रीभाष्यादितिसुष्टूक्तम्–सुमनसां विदुषाम्,सुखवृद्ध्यैहर्षोत्पादनाय, जयति सर्वोत्कर्षेणवर्तते, तं श्री लक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये–

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवं समासेनतत्वहित पुरुषार्थान् निरूप्य दानीं 'द्रव्याद्रव्य प्रभेदान् मित मुभयविधं तद्विदस्तत्व माहुर्द्रव्यंद्वेधाविभक्तंज ड़मजड़मिति प्राच्यमव्यक्त कालौ। अन्त्यं प्रत्यक्पराक्च प्रथम मुभयथातत्र जीवेश भेदान् नित्याभूति र्मतिश्चेत्यपरमिहजड़ा मादिमां केचिदाहुः'। 'तत्रद्रव्यंदशावत्प्रकृतिरिहगुणैस्सत्वपू र्वैरुपेता कालोऽब्दाद्याकृतिस्स्यादणु रवगतिमान्जीव ईशोऽन्य आत्मा। सम्प्रोक्तानित्यभूति स्त्रिगुणसमधिका सत्वयुक्ता तथैवज्ञातुर्ज्ञेयावभासोमति रिति कथितं संग्रहात् द्रव्यलक्ष्म, तत्तद्रव्येषु दृष्टंनियतिमदपृथक् सिद्ध मद्रव्यजात' मितितत्व विभागे तल्लक्षणेच सिद्धान्तसिद्धे सत्यपि प्रकृत्यात्मभ्रमस्व तन्त्रात्मभ्रमयोः प्रथमतो निराकरणार्थं भोक्ताभोग्यंप्रे रितारञ्चमत्वाजुष्टस्ततस्तेना मृतत्वमेति) इत्युप निषदुक्तरीत्या चिद चिदीश्वर रूपेण तत्वत्रय विभागमेव बहुशः आचार्या आद्रियन्ते, तत्रदेहस्य स्वविशेषणत्वाग्रहेणोत्पन्नः प्रकृत्या त्मभ्रम आत्मव्यतिरिक्तत्वेनाचेतननिरूपणेनोपशाम्यति तथा स्व विशेष्य भगवदग्रहेणोत्पन्नः स्वतन्त्रात्मभ्रमः स्वा धीन त्रिविध चेतनाचेतन स्वरूपस्थिति प्रवृत्ति भेदस्य भग वतो निरूपणेनोपशाम्यति अतः पूर्वाचार्य परिगृहीतं श्री भाष्यादि ग्रन्थेषु प्रपञ्चितं तत्वत्रय विभागमेव निरूपयन्ति विधात्रादिस्तम्बावधिष्वित्यनेन, तत्तत्प्रमाण सिद्धं पदार्थ

जात मभिधीयते, । जड़ जीवाच्युतमय मित्यनेन चिदचिदी श्वररूपेण विभागोबोध्यते । गुणैर्जात्या नाम्नेत्यनेन समन न्तरोद्धृत श्लोक प्रतिपादितानि गुणजाति नामान्यभिधीय न्ते । निगमनुत तत्वत्रय मित्यनेनैतादृश तत्वत्रय विभागस्य भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वेति श्रुत्यभिहितत्व मुच्यते, यदीयोच्छ्रीभाष्याज्जयतीत्यनेन श्रीभाष्य एतेषां सम्यङ् नि र्णयो व्यधायीति व्यज्यते, तदेवं सम्यङ् न्यायानुगृहीत प्रमा णैस्तत्वत्रयं निर्णयतां मोक्षावधि सुखं सम्पनीपद्यत इतिसुख बृद्धै सुमनसामित्यनेन बोध्यते।

(भाषार्थ) गुण जाति तथा नामोंसे ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त अचेतन चेतन व परम चेतन मय यह वेदोंसे वन्दित जो तत्वत्रय हैं वह जिसके प्रतिपादन किए हुए श्री भाष्य नामक ग्रन्थके द्वारा विद्वानोंके आनन्द देनेके लिए सर्वो त्कर्षसे वर्तमान है उन श्रीमान् दीनोंके रक्षक श्रीलक्ष्मण जीके शरणमें प्राप्त हैं ।

(इत्यनेनपूर्वावताम्प्रणीतव्याकरणरीत्यैवैक्यशब्दमाह—)

वदत्यैक्यंकिञ्चित्पद मपिनसुप्तिङ्कृदुदितं
तथाप्यद्वैतीयःस्मरतिनविभक्तिप्रकृतिजम् ।
हठग्राहग्रस्तोयदमलवचः पथ्य विरहात्,
प्रपद्ये श्रीमन्तंकृपण शरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥२२॥

(अन्वयः) किञ्चिदपि सुप्तिङ्कृदुदितं पदम् ऐक्यं न वदति

तथापि हठग्राहग्रस्तः,अद्वैतीयः, यदमलवचःपथ्यविरहात्,वि
भक्तिप्रकृतिजंपदं न स्मरति तंश्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये —
(व्याख्या) किञ्चिदपिकिमपि सुप्चतिङ्चक्रञ्चते लैरुदितं
सुबन्ततिङन्तकृदन्तनिष्पन्नम्, पदंसुप्तिङन्तरूपम्, एवंयमेक
त्वम्, नबदति नकथयति,तथापिप्रबलतरैतदुपरोक्तप्रमाणेस
त्यपि हठएवग्राहस्तेनग्रस्तआग्रहमकरगृहीतः, अद्वैतीयःअद्वैत
मतावलम्बी, यस्य श्रीलक्ष्मणस्यामलं निर्मलं यद्वचोवचनंतदे
व पथ्यं लोकोपकारकं तस्यविरहोऽभावस्तस्मात्, विभक्तिः
सुप्तिङ्चयरूपा प्रकृतिःशब्दस्ताभ्याञ्जातमुत्पन्नम्, (विभक्ति
श्च,सुप्तिङौविभक्तिसंज्ञौस्तः) पदंसुप्तिङन्तरूपम् नस्मरतिन
भजते तंश्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये —

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवंस्वमतस्थेम्नेतत्वत्रय स्वरूपं श्रुत्यनुमतंप्रतिष्ठाप्येदानीं
सच्चिदानन्दकूटस्थ निर्विशेष ब्रह्मैक्यमेव तत्वम्, अन्यत् सर्वं त
स्मिन् परिकल्पितं मिथ्याभूतमिति प्रजल्पतामाम्नायचर्चा
कवचधृतिकनद्धोमुखद्वीपिनां प्रच्छन्न बौद्धानाँमृषावादिनांमतं
निरस्यन्ति बदत्यैक्यं किञ्चिदित्यादिनापद्येन। तत्रप्रत्यक्षस्य
स्वरूप निरूपकधर्मविशिष्ट धर्मिविषयत्वेन तस्यापि निर्वि
शेषाद्वैतबोधकत्वंनसम्भवति। अनुमानस्यपक्षतद्धर्म हेत्वादि
विषयत्वेनचन निर्विशेष बोधकत्वमिति सिद्धवत्कृत्य तस्यश
ब्दगम्यत्वं निरस्यते बदत्यैक्य मित्यादिना तत्रब्रह्मव्यतिरिक्त

सर्वभेदमिथ्यात्व वादिनोऽद्वैतिनोऽद्वैतस्य द्वैतप्रति योगिकत्वा-
त् प्रतियोग्यप्रसिद्धौ तदभावाप्रसिद्धेरद्वैतसिद्धिरेव न सम्भव-
तीत्यैक्य रूपस्या द्वैतस्य दुर्निरूपत्वादेवावाच्यत्वंनिरुह्यते,
ननु गगन कुसुमंनास्तीत्यादाविव भ्रान्ति सिद्धोभेदोऽभावप्र-
तियोगी भवतीति वक्तव्यं विकल्पासहत्वात्। सभेदःस
त्यादभिन्नो भिन्नोवा। भिन्नत्वञ्च सत्यं मिथ्यावेति विक
ल्पयामः तत्र न प्रथमः सत्यादभिन्नत्वे भ्रान्ति सिद्धत्वासि
द्धेः द्वितीयकोटौच न भेद निष्ठ भिन्नत्वस्य मिथ्यात्वमिति
कल्पोऽव कल्पते, भि न्नत्वस्य मिथ्यात्वेऽभेद एवसिद्धइति
पूर्वोक्तदोषानतिवृत्तिस्सम्पनीपद्यते, भिन्नत्वं सत्यंचेति
कल्पेसत्य भेदोप गतिरिति अपसिद्धान्तादिदोष सहस्रमुन्मि-
षति,किञ्चभेद सत्यत्व मनङ्गीकृत्यभेद मिथ्यात्व साधनेप्रवृ
त्तस्य भेदसत्यत्वा भ्युपगमेघट्टकुट्यां प्रभात प्रायारजनी,किञ्च
सत्यभेदाङ्गीकारे स एव निषेधप्रतियोगी भवितुमर्हतीति
किंतस्य मिथ्यात्व कल्पनेनेति दूरतो धावनं श्रममात्रफलं
भवति तदेतत् संगृहीतमाचार्यैः नन्वद्वैते निषेध्योगगन कुसुम
वत्भ्रान्तिसिद्धोऽस्तुभेदोमैवंसत्यादभिन्न स्सखलु नयादतत्
भ्रान्ति सिद्धत्व सिद्धिः, भिन्नत्वं चास्य तस्मात् यदिभवति
मृषासिद्धि दत्तोत्तरन्तत्सत्यंचेत् सत्यभेदोपगतिरितिमुधादूर
तोधावनं वः' इति, किंच 'ब्रह्मणो निर्विशेषत्वमितिधर्मोऽस्ति
वा नवाद्विधापि सविशेषत्वं तयोग तदयोगजमित्युक्त री

त्वा सविशेषत्वमेव सिद्ध्यतीति अतः पदार्थस्य दुर्निरूपत्वा च्छब्दवाच्यत्वं न सम्भवतीति सिद्धम् । किंचशब्दस्वभाव पर्यालोचनेऽपि निर्विशेषाद्वैतस्य वाच्यत्वं नयुज्यते प्रकृति प्रत्यय रूपेण विभक्तेपदे प्रकृति प्रत्ययार्थौ परस्पर भिन्ना वेव प्रतिपाद्येते किंचतत्तत्तन्त्रनिष्ठ निर्णीतेऽभि हितान्वये ऽन्विताभिधानेवान्वयस्य द्विष्ठत्वात् वस्तु द्वयानङ्गीकारेणा न्वयस्यबोधकत्वमेवनसङ्घटीति । नचनिर्विशेषपदंनिर्विशेषा र्थं बोधकं समस्तीति अभिमन्तव्यम् । निर्विशेषपदमाप्तोक्तंञ्चे त् सर्वेषां पदानां प्रवृत्तिनिमित्त विशिष्टार्थ वाचकत्वात्स्वय मपि निर्विशेषत्व विशिष्टमेवा भिदधीतेति सर्व विशेषनिषे धस्य स्वव्यापार विरुद्धतया तत्तत्प्रकरणादुपस्थापित यत्किंचिद्विशेष निषेधकमेव भवति, निर्विशेषा पुरीतिवत् । अनाप्तोक्तञ्चेद्गगनार विन्दादिपदवदयोग्यार्थ पदसमभि व्याहार मात्रमित्यभिदध्महे, तदेवंवाच्यस्य दुर्निरूपतया वाचकस्वभावेनचनिर्विशेषाद्वैतबोधकत्वंनसम्भवतीति,यथाहुः वदत्यैक्यंकिञ्चित् पदमपिनसुप् तिङ्कृदुदितमिति । तत्रसुप्तिङ् कृदुदित मित्यनेन प्रकृतिप्रत्ययभेदेन नानार्थ याथार्थ्यमभ्युपेय मितिसूच्यते । तदेवंशाब्दबोधप्रकारे निर्णीतेऽप्यद्वैतिनः परम हितनिर्दुष्टभाष्यकारवचनमनङ्गी कुर्वाणादुराग्रह ग्रहिलमनसो विभक्तिप्रकृतिजंपदंयथा वस्थितार्थबोधकं वोध्यमानाअपिन बुध्यन्तइतिशेषेण प्रतिपाद्यते, पित्तोपहतस्यक्षीरमिव भाष्य-

कारबचनं हठग्राहग्रस्तानां हृदयङ्गमंनभवतीति तेषामेवदाषा द्व्यत्वंध्वन्यते । एतेनश्लोकेन "शब्दस्यतुविशेषेण सविशेष वस्तुन्येवाभिधान सामर्थ्यं पदवाक्य रूपेणप्रवृत्तेः । प्रकृति प्रत्ययोगेनहि पदत्वं, प्रकृतिप्रत्ययोरर्थ भेदेनपदस्यैव विशि-ष्टार्थप्रतिपादन मवर्जनीयम् । पदभेदश्चार्थभेद निबन्धनः पदसंघातरूपस्य वाक्यस्यानेक पदार्थसंसर्ग बोधकत्वेननिर्वि शेषवस्तु प्रतिपादना सामर्थ्यात् न निर्विशेष वस्तुनिशब्दः प्रमाणमिति भवभयाभि तप्तजनभागधेय वैभव भागितावतर-णानां परम कारुणिकानां श्रीभाष्यकाराणाँ श्रीभाष्य श्रीसूक्ति रनुस्मार्यते । तदेवं निर्विशेष पदार्थस्य शब्दबोध्यत्वा सम्भवात् निर्विशेषाद्वैत वादस्यवेद बाह्यत्वं व्यञ्जित मिति सिद्धम ॥२२॥

(भाषार्थ) कोई भी सुवन्ततिङन्त और कृदन्त शब्द एकता को नहीं बतलाते तथापि जिनके सद्वचनोंके पथ्यके अभाव से हठरूपी ग्राह से ग्रस्त अद्वैती लोग प्रकृति विभक्ति से उत्पन्न पदको नही मानते उन श्रीमान् दीनोंके रक्षक श्री लक्ष्मणजी के शरण मे प्राप्तहैं ।

(त्रिरूपकथन प्रकारेणापि पुनःतत्वत्रयंषड्दर्शनैः प्रमाणयति—)

हरिंजानामीति स्फुरति सुसमाधावपियत—
त्त्रिरूपत्वं सर्वागमविहित मत्यन्तसुदृढम् ।
समस्त नेदान्ते यदपिकुदृशः पालयतितान्—
प्रपद्येश्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥२३॥

(अन्वयः) हरिं जानामि, इति सुसमाधावपि यतः स्फुरति, अतः सर्वागमविहितं त्रिरूपत्वम् अत्यन्तसुदृढं तदपि कुदृशः समक्षं नेक्षन्ते तान् (यः) पालयति तं श्रीलक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये–

(व्याख्या) हरिं श्रीमन्नारायणम् जानामि वेद्मि, इत्येवं, सुसमाधावपि योगदशायामपि यतःकारणात् स्फुरति प्रकाशते, अतोऽस्मात्कारणात् सर्वागमेष्वविहितं निखिलशास्त्रप्रतिपादितम्, त्रिरूपत्वं ज्ञातृज्ञेयज्ञानरूपत्वम्, अत्यन्तसुदृढं वेदविहितत्वादतीव परिपुष्टम्, तदपि त्रिरूपत्वस्य दृढतरत्वादपि कुत्सितादृक् येषान्ते कुदृशोऽविचारशीलाः समक्षं प्रत्यक्षम्, नेक्षन्ते नावलोकयन्ति, (अतएव कुदृशोऽत्यान्धीभूता इति यावत्)तान् पूर्वोक्तानपि,(अपीत्यध्याहार्यः) यः श्रीलक्ष्मणः पालयति रक्षति ननुस्वमूर्ध्नाधृतायां वसुन्धरायास्तानधः पातयति विपूर्वकाद्धाञ्धातोर्क्तप्रत्यये दधातेर्हिरिति ह्यादेशेविहितमिति–तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये–

(तात्पर्य विवरणम्)

न वयं प्रमाणान्तरेण निर्विशेष वस्तुसिद्धि मभ्युप गच्छामः स्वानुभव सिद्धंहितदिति परेषाँ प्रलापंज्ञानस्य कर्म कर्त्र वच्छिन्ना वभास रूपत्वेन सविशेषत्वं साधयन्तो निरुन्धते हरिं जनामीत्यादिना पद्येन तत्र पूर्वार्धेन दोष गन्ध विधुरायां विषयान्तर व्यासङ्ग रहितैकाग्र्य साध्यायां शमदमादि

सम्पन्नाधिकारि निर्वाह्यायां योग दशायामपि हरिं जानामी तिहिज्ञानं स्वयम्, प्रकाशतेइत्यतोज्ञानस्यत्रिरूपत्व मवर्जनीय मिति प्रति पाद्यते,सुसमाधा वितिसुशब्देन दोष विधुरत्वं गुण भूयिष्ठताचाभिप्रेयेते,अत्यन्त्य सुदृढ़ मित्यनेन स्वानुभव सिद्धत्वेन सहृदयं नोस्तिकैः रप्यप्रधृष्यत्वं सूच्यते । तदेवं सर्वानुभव साक्षिक मप्यर्थं धाष्ट्र्येनानभ्युपगच्छतां कुदृशामपि "आत्मद्रुह ममर्यादं मूढ मुज्झितसत्पथं । सुतरामनुकम्पेत नरकार्चिष्म दिन्धन मित्युक्तरीत्या कृपापूर्वकं पालनस्य कथनेन तेषां कुदृशां दोषा करत्वं श्रीभाष्य कारस्योभय लिङ्गताच तृतीय पादेन व्यज्येते । अनेनश्लोकेन यस्तु स्वानुभव सिद्धमिति स्वगोष्टी निष्टस्समयः । सोऽप्यात्म साक्षिक सविशेषानुभवादेव निरस्तः । इदमह मदर्शमिति केनचिद्विशेषेण विशिष्टविषयत्वात् सर्वेषामनुभवानामिति श्रीभाष्य सूक्तिरनुस्मार्यते । एतेनस्वानुभव विरुद्धत्वञ्च दाम्भतस्य व्यज्यते ॥ २३ ॥

(भावार्थ) "मै भगवान्को जानताहूँ" यह बुद्धि समाधि मे भी स्फुरित रहतीहै तथापि सर्व शास्त्र प्रतिपादित अत्यन्त सुदृढ़ त्रिरूपत्व (ज्ञातृ-ज्ञेय, ज्ञान इत्यादि) को भी कुदृष्टि लोग सामने नहीं देखते, उनकी भी जो रक्षा करते हैं उन श्रीमान् दीनों के रक्षक श्रीलक्ष्मणजी के शरणमे प्राप्त हैं ।

नृणांमोक्षेलक्ष्याःक्वचिदपि शिवब्रह्मसनका—
गणेशोऽर्कःशक्तिः कपिलकणभुक् सांख्यसुगताः ।
यदानासन्नारायण सुमहिषीप्रै रिरतयं—
प्रपद्येश्रीमन्तं, कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥२४॥

(अन्वयः) शिवब्रह्मसनकाः, गणेशः, अर्कः शक्तिः कपिलकण भुक्साँख्यसुगताः, यदा, क्वचिदपि, नृणांमोक्षे लक्ष्याः, नासन्, तदा, नारायणसुमहिषी, यं, प्रैरिरत तं श्रीलक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये—

(व्याख्या) शिवश्चब्रह्माच सनकश्चते शिवब्रह्मसनका रुद्रस्वयम्भूसनकादयः, गणेशोगणपतिः, अर्कोभास्करः, शक्ति र्देवी, कपिलश्चकणभूक्च सांख्यश्चसुगतश्चते कपिलकणाद सांख्यबौद्धाः, यदायस्मिन्समये, क्वचिदपि कदाचिदपि नृणां मानवानाम्, मोक्षे परमपदप्रदाने, लक्ष्या उदाहरणीभूताः, नासन्नाभवन्, तदातस्मिन्नवसरे, नारायणस्यसुमहिषी नारायणसुमहिषी लक्ष्मीः, यं श्रीलक्ष्मणम्, प्रैरिरत प्रेरित वती, तं श्रीलक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये—

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवं स्वानुभव विरुद्ध सिद्धान्त स्थापकत्वं मृषावादिना मभिधायेदानीं मतान्तरणाँभ्रमप्रमाद विप्रलिप्साशक्तिमूलत या मोक्षानुपयोगित्व मुद्वीक्ष्य नित्यमज्ञात निग्रहया वात्सल्य सहचरित मातृत्व माननीयया श्रीलक्ष्मीदेव्या सम्यक् सम्प्रदाय

प्रवर्तनेनसर्वेषां मुक्त्युपलम्भनार्थं, अन्येचानादि सिद्धाः श्रुति समधिगताः, सूरयः सन्त्यसंख्याः कर्माभावा दनादेर्नतुभवति कदाप्येषु संसारगन्धः" इत्युक्तरीत्यासंसारगन्ध रहितानां नित्यसूरीणामन्यतमस्य श्रीशेषस्य प्रेषणस्य वर्णनेन प्रकृत सिद्धान्तस्य स्वतस्सर्वज्ञ भ्रमप्रमादादि दोषविधुर श्रीशेष प्रवर्तितत्वया मुक्त्युपयोगित्वं विशदयन्निःनृणाँमोज्ञे इत्यादिना पद्येन। तत्र शिवब्रह्म सनक गणेशार्क शक्ति कपिल कणभुक् सेश्वर सांख्य सुगतास्तत्तन्मत प्रवर्तकाः कथ्यन्ते। यदाते मनुष्याणांमोक्षसाधनेऽसमर्थाःसमभूवन्,तदानारायणसुमहिषी लक्ष्मीर्यं समीहितसाधनाय प्रेषयामासेति तृतीयपादेनप्रतिपा द्यते । अतःप्रकृतसिद्धान्तनिष्ठानां मोक्षावश्वंभावो ध्वन्यते ॥ २४ ॥

(भाषार्थ) रुद्र ब्रह्मा सनकादिक गणेश सूर्य,देवी कपिल कणाद साँख्य (सेश्वर) बुद्ध इत्यादि जब किसी प्रकार मनुष्योंके मोक्ष देनेमें समर्थ नहीं हुए, और मोक्षके स्वतः उदाहरण नहीं हुए उसी समय श्री लक्ष्मीजो जिनको समर्थ समझ कर उस कार्यके लिए भेजा उन श्रीमान् दीनोंके रक्षक श्रीलक्ष्मणजीके मै शरण हूं ।

ततोविष्णोर्हस्ताङ्कित कनकपत्रेद्धमुभयो,
विभूत्योर्नेतृत्वंसुखनियममाश्रित्ययतिराट् ।
चलत्स्थास्नूनज्ञानमुचदलमुग्राहिजूम्भतः—

प्रपद्ये श्रीमन्तंकृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥२५॥
(अन्वयः) ततः,यतिराट्,विष्णोर्हस्ताङ्कितकनक पत्रेद्धंसुख नियमंउभयोर्विभूत्योः, नेतृत्वम् आश्रित्य, उग्राहिजगतःअज्ञानचलत्स्थास्नून्, अलममुचत् (तं) श्री लक्ष्मण मुनिम्प्रपद्ये
(व्याख्या) ततःनारायणमहिषीप्रेरणानन्तरम्, यतीनांराट् यतिराट्वेषधारीश्रीशेषनारायणः विष्णोःश्रीपतेःहस्तेलक्ष्मरेखाङ्कितंचिन्हितंयत्कनकपत्रं सुवर्णपत्रम् तेनेद्धंदीप्तम्, (स्वर्णं सुवर्णं कनकमित्यमरःइन्धीदीप्तावित्यस्मात् क्तप्रत्ययेनलोपेचइद्धमिति सुखेनअनायसेननियमः सर्वानुकूलकार्य्यप्रणाली यस्यतत्, उभयोर्द्वयोः, विभूत्योः लीलाविभूतित्रिपाद्विभूत्योः नेतृत्वमाधिपत्यम्, आश्रित्यलब्ध्वा, उग्रोयोऽहिःसइव जगत् तस्मात् कठिनव्यालसंसारात्, अज्ञान्बोधरहितान्, चलत्स्थानून्जङ्गमस्थावरान् अलंपर्याप्तम् अमुचत् मोचयामास (तं) श्रीलक्ष्मण मुनिम् प्रपद्ये,

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवं मतान्तराणाँ मोक्षासाधकतामुद्घोद्यतत्साधनार्थं प्रेषणेन प्रकृतमतस्य मोक्षसाधनत्व मितिवृत्त वर्णनेन प्रत्यपादि । अथेदानीमुभय विभूतिनाथेन श्रीमन्नारायणेन स्वहस्ताक्षर लांछित पत्रिकावितरण पुरस्सरं विभूतिद्वय नेतृत्वप्रदानमपि प्रस्तुवन्तस्तदाज्ञानुसारेणभूम्यामवतीर्य सर्वेषां तत्वार्थ

मुपदिश्य स्थिर चराणां तत्तदुपाया नुष्ठानेन मोक्षयितृत्वं निरूपयन्ति ततोविष्णोरित्यादिनापद्ये न । यतिराडित्यनेनस्य त्याधिपत्यं"अनपायि विष्णुपद संश्रयंसदा कलयाक्याधिकल याप्युनुज्झितम्,अकलङ्कयोगमजड़ाशयोदितंयतिराजचन्द्रमुप रागदूरग" मित्युक्त प्रकारेणचन्द्र सादृश्यमपि श्लेषेणाभिधीय ते । हस्ताङ्कितकनक पत्रेद्धमित्यनेनेतर मतस्थापकैरप्यनासा दितपूर्वामिह्यायसां सम्भावना भगवतः सकाशादाचार्यैरधि गतेतिव्यज्यते । ततोविष्णोरित्यामन्तर्यार्थं कस्य ततश्शब्दस्य प्रयोगाच्छ्रिया प्रथमतो नियमनानन्तरं तयैव पुरुषकारभूतया प्रतिबोधितेन भगवताऽनुगृहीतत्वं व्यज्यते उभयोर्विभूत्योर्ने तृत्वं मित्यनेन विभूतिद्वय नायक इतिवचनं स्मार्यते तृतीय पादेनस्थिर चराणामतिभयङ्कर महासर्प सन्निभ संसारान् मोचयितृत्वमुच्यते । एतेनानुष्ठापनेन मोचयितृतायाः प्रद र्शिततथास्यमतस्य विश्रम्भ णीयत्वं ध्वन्यते ॥ २५ ॥

(भाषार्थ) तत्पश्चात् (श्रीलक्ष्मीजी द्वारा भेजे जानेके पश्चात्) श्रीमन्नारायणके कर कमलों द्वारा लिखित सुवर्ण पत्रसे प्रकाशित सर्वानुकूल नियम युक्त दोनों विभूतियों (लीला विभूति त्रिपाद विभूति) के संरक्षण भार को ग्रह ण करके जिन रामानुज स्वामीने अज्ञानी चराचर जीवोंको संसार रूपी सर्पके मुखसे छुड़ाया है, उन श्रीमान् दीनोंके रक्षक श्री लक्ष्मणजीके शरणमें प्राप्त हैं ।

प्रचण्डैश्चार्वाकैर्दुरितधिषणैर्बौद्धनिकरै
स्तमस्संघैरन्धेजगतिमुकुटार्कावलिभृतः ।
अनाचारैर्जैनैर्दशशतमुखादभ्युदितवान्
प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपणशरणंलक्ष्मणमुनिम्॥२६॥

(अन्वयः) तमःसंघैःप्रचण्डैः चार्वाकैः दुरितधिषणैः,बौद्धनिकरैः, अनाचारैः, जैनैरपि, जगति अन्धेसतिमुकुटार्कावलिभृतः दशशतमुखात् (यः) अभ्युदितवान्, तम् श्रीलक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये,

(व्याख्या) तमसोऽज्ञानस्यसंघासमूहरूपास्तैः(अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रंतिमिरंतमइत्यमरः , प्रचण्डैरुद्धतैः, चार्वाकैर्लोकायतिकैः दुरिता दुष्कृता पापयुक्तेति यावत् धिषणा बुद्धिर्येषांतैः (कलुषं वृजिनैनोघमंहो दुरित दुष्कृतमित्यमरः बौद्धानाँ सौगतानाँ निकराः समूहास्तैः (सर्वज्ञः सुगतोबुद्धो धर्मराजस्तथागत इत्यमरः) अनाचारै राचाररहितैः, जैनैर्जिनमतावलम्बिभिः अपीतिनिश्चयार्थद्योतकः जगति संसारेअन्धे सारासारविवेक रहिते सति, मुकुटान्येव किरीटान्येवार्काः सूर्य्यास्तेषामावलिं पङ्क्तिं विभर्तिधारयति तस्मात् (अथ मुकुटंकिरीटंपुन्नपुंसकमितिकोषः)दशशतञ्चतन्मुखं तस्मात्सहस्राऽननात्,यःअभ्युदितवान्उक्तवान् तं श्रीलक्ष्मणमुनिम्प्रपद्ये

(तात्पर्य विवरणम्)

इदानींफणामणि सहस्रभूषितोत्तुङ्गोत्तमाङ्गमण्डित श्रीशेषरूप

मास्थायपरमतनिरासमुपवर्णयन्ते । प्रचण्डैरित्यादिनापद्ये न,तत्रयथाश्वानःपरस्परं विद्विषन्तोऽपिवराहमेकमत्येनमारयितुमहमहमिकयाऽपतन्ति,तथैव परस्परंमतेऽपरिमितेविसम्बादे विद्यमानेऽपि 'परस्परं विरोधेतुत्रयंपञ्चचते शतं । अन्यैस्सह विरोधेतुत्रयंपञ्चोत्तरंशत'मितिधर्मराजवचनंप्रमाणयन्त इवैकमत्येन श्री सिद्धान्त विध्वंसनेचतुर्विधा बौद्धाः जैनाश्चार्वाका अन्येऽपिनास्तिकाअहं पूर्विकया प्रयतन्ते,तथाप्रवर्तमानान् स्वव्याधातादिदोषशतकवलित कुतर्ककल्कभूषितदुर्वादसम्भृतान् तान् नास्तिक परिबृढानादित्य इवतमस्संघातन्तत्वा लोकलब्ध साहाय्येन वाग्वज्रेण विनाशितवान् भगवान् भाष्यकारः । तदानींतिरस्करण्यन्तर्हिताः श्रीभाष्यकारायथा वस्थितस्वरूप मास्थाय सहस्रवदनैरुत्तर मुदीरयन्तो हेलयैवविजिग्यिरे इति कथानेन व्यज्यते । प्रचण्डैश्चार्वाकैरित्यनेनतेषाँ लोकायतिकानां देहात्मवादकार्य कारणभाव भङ्ग प्रत्यक्षेतर प्रमाणनास्तित्व बादप्रभृति कुतर्कलब्ध प्रतिष्ठतया दुर्जयत्वेन प्रचण्डत्व मुच्यतेबौद्ध निकरैरित्यनेन भिक्षुपाद प्रसारणन्यायेन क्षणभङ्ग प्रत्यक्षभङ्ग बाह्यार्थ भङ्ग द्वारा सर्वशून्यबाद निष्ठा,वैभाषिक सौत्रान्तिक योगाचार माध्यमिकाः वेदाबुद्धागमाश्च स्वयमपिहि मृषामानता चैव मेषाँबौद्धा बुद्धिः फलञ्चस्थिर तदितरतायन्त रालञ्चबुद्धेः॥ आतस्त्रैविद्य डिम्भान्प्रसितु मुपनिषद्धार बाणोपगूढैः प्रायः

प्रच्छादितास्वा पटुभिरसुरता पौराड्रकाद्वैसानेष्ठैः इत्याचार्य्यैः "वेदोऽनृतोबुद्ध कृतागमोऽनृतः प्रामाण्यमेतस्यच तस्यचानृतं। बोद्धानृतोबुद्धि फलेतथानृते यूयञ्चबौद्धाश्च समान संसदः" इति यादवप्रकाशाचार्य्यैश्चोपाल्लब्धामायावादिनोऽपिसंगृह्यन्ते। दुरितभिषयैः तमस्संघै रित्यनेन "पापंप्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः। नष्टप्रज्ञःपापमेव पुनरारभतेनर" इत्युक्तरीत्या पुनः पुनः पापानुष्ठानेन नष्टबुद्धित्वं "अधर्मं धर्ममितिया मन्यते तमसानृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिस्सा पार्थतामसीति" गीतोक्तप्रकारेण तमोनिबन्धन बिपरीतद्रष्टुत्वमुच्यते, अन्धेजगतीत्यनेन यथावस्थितार्थ ज्ञान विधुरत्वमुच्यते। मुकुटार्काबलिभृतो दशशतमुखादित्यनेन "पत्युस्सम्यमिनाँ प्रणम्यचरणौ तत्पादकोटीरयोः सम्बन्धेन समेध्यमान विभवान्धन्याँ स्तथान्यान् गुरूनिति" निगमान्त महादेशिकानुगृहीतरीत्या यतिराजतया तच्छरणाकिरीट निकर मण्डित सहस्रमुखैरुत्तरदानेन निरासकत्वं बोध्यते, तेनादि शेषरूपधारणस्वस्य तदवतार रूपत्वञ्चाभ्यज्यते। नास्तिकानां तमस्संघत्वेन मकुटस्यार्कत्वेनच वर्णनात् सूर्य्यस्यतमोनिरास इवाचार्याणाँ नास्तिक निरासोऽनायासेनैव सम्पन्न इति व्यज्यते, तेन श्रीसिद्धान्तस्य सर्वोत्कर्षः प्रकाश्यते।

(भावार्थ) प्रचण्ड नष्ट बुद्धि अनाचारी तथा अन्धकार रूप, चार्वाकों बौद्धों और जैनों के द्वारा जब संसार अज्ञा-

नाश कर दिया गया तब जो मुकुटोंके ब्याज से अनन्त सूर्य्यों को धारण करने वाले सहस्र मुखों से (मतान्तरों का खण्डन कर) अभ्युदित हुए उन श्रीमान् दीनों के रक्षक श्रीलक्ष्मणजीके शरण मे प्राप्त हैं ।

(एतेनाघटितघटनापटीयसीं शक्तिमाह)

अनाधारश्शेषः कथमिदमितिस्तम्भयतिचेत्–
स्वमायामाहात्म्यान्नटइव कुतर्कं परिहरन् ।
स्वरारोहन्नृत्यन् सुघटयतियो दुष्करतरं–
प्रपद्येश्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥२७॥

(अन्वयः) अनाधारः शेषः, इदं कथं स्तम्भयति, इतिचेत् स्वमायामाहात्म्यात्, स्वरारोहन् नृत्यन् नटइव कुतर्कं परिहरन्, यः, दुष्करतरं सुघटयति, तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये,

(व्याख्या) नविद्यत आधारोयस्यासावनाधारोनिराश्रयः, शेषः फणी इदंजगत्, कथंकेनप्रकारेण स्तम्भयतिधारयति, निराश्रयस्य गुरुतरपदार्थं गृहीतुमशक्यत्वादितिचेत्, स्वमायामाहात्म्यं स्वमायामाहात्म्यं तस्मात् स्वकीयलोकोत्तरैश्वर्य्यशक्तियोगप्रभावात्–लोकेऽपितादृशशक्ति गौरवंवर्तत इत्यत आह, स्वर्दिवम्, आरोहन्, (वेणवादिना) नृत्यन्गात्रं विक्षेपयन्, नृतीगात्रविक्षेपेऽस्मात्शतृप्रत्ययः–नटइव शैलूष इव, (शैलालिनस्तु शैलूषाजायाजीवा कृशाश्विनः, भरता इत्यपिनटाइत्यमरः) कुतर्कं दुर्वादम्, परिहरन् निराकुर्वन्,

यः श्रीलक्ष्मणः, अतिशयेनदुष्कर मितिदुष्करतरं कठिनतरम्, (कार्यमितिशेषः) सुघटयति सम्पादयति, तं श्रीलक्ष्मण मुनिं प्रपद्ये–

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवं प्रतिमतस्थदुर्वैतण्डिकवैतण्डानां सिद्धान्तप्रवचन सिंहनादेन निरासमुपवर्ण्येदानीमवतारप्रयोजनस्य निष्पन्न-त्वात् आलम्बननिरपेक्षं स्वशक्तिमाहात्म्यमात्रसाहाय्येन परमपदारोहण मुपवर्णयन्त एतादृशाङ्ग् लवृत्तान्तेन नास्ति-ककल्पानां केषाञ्चिदार्य्यभट्टप्रभृतीनां ज्योतिर्विदां कुतर्क मपिनिरस्तं ज्ञापयन्ति अनाधार इत्यादिना पद्येन। तत्र प्रथम पादेन तेषांकुतर्क उपन्यस्यते, यदि पृथिव्या अतिगुर्व्या विधारणार्थं शेषः कल्प्यते, तर्हिगुरुभूतस्य तस्यापि विधारणार्थं मन्यदपिकल्पनीयं प्रसज्यत इत्यप्रामाणिकानवस्था प्राप्नोति, यदि स्वशक्त्या शेषस्य स्वपरनिर्वाहक समाधिना विधृतत्व मिष्यते तर्हिपृथिव्या एवतादृशधारकत्वमस्त्विति । तमिम माक्षेपंशेषेण परिहरन्ति तत्रहेतुः स्वमाया माहात्म्या दित्य-नेनोच्यते विचित्रशक्तिप्रभावात् सर्वं संघटत इत्यविचारित रमणीयेयमाक्षेपाडम्बरविडम्बना। तादृशविचित्र शक्तियोग मेव परमपदारोहण वृत्तान्तेन साधयन्ति स्वरारोह न्नित्या-दिना । स्वरारोहस्यहेलासिद्धतां दृष्टान्तेन विशदयन्ति नटइवेति । यथानटअनायसेनैव दुष्करतरचरित्रमभिनयति

तथेदमपीत्यर्थः दुष्करतरमित्यनेनेतरैर्दुष्करतर मप्यस्यसुकरमेवेति बोधनेनविचित्रशक्तियोगोद्दढीक्रियते ॥ २७ ॥

(भाषार्थ) आधार रहित शेषजी इस विश्वको कैसे धारण करते हैं, यह शङ्का यदि किसीके मनमे उत्पन्न हो तो उसे यह जान कर चुप हो रहना चाहिए कि उनके मायाका यह प्रभाव है, लोकमेभी ऐसे अनेकों उदाहरण विद्यमानहैं जैसे कि कोई नट आकाशमें चढ़ता है और नृत्य करते हुए उतर भी आता है इसी प्रकार अनेकों कुतर्कों को दूर करते हुए जो कठिनसे कठिन समस्यायोंका निर्णय (हल) करते हैं उन श्रीमान् दीनोंके रक्षक श्री लक्ष्मणजीके मै शरण हूं

(एतेनवेदानामपि दुर्ज्ञेयत्वमाह)

महाश्चर्य्यागारं त्रिविधचिदचित्लोकनिवहं,
समुद्यन्नश्यन्तंप्रतिकलयतश्शक्तिजलधेः ।
अनन्तत्वोच्छेदाच्छ्रुतिरपिनयस्यान्तमगमत्,
प्रपद्ये श्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥२८॥

(अन्वयः) समुद्यन्नश्यन्तंमहाश्चर्य्यागारंत्रिविधचिदचित्लोकनिवहंशक्तिजलधेः प्रतिकलयतः, यस्य अन्तम् अनन्तत्वोच्छेदात्, श्रुतिरपि, नागमत्, तं श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये ।

(व्याख्या) पूर्वं समुद्यन्पश्चान्नश्यन् इतिस्नातानुलिप्तवत्समासःसमुद्यन्नश्यन्तमित्यस्य—उत्पद्यमानलीयमानमाविर्भावतिरोभाववदित्यर्थः, महान्तिचतान्याश्चर्य्याणिचतेषामगा

अत्यन्त तस्थानम्, त्रिविधस्त्रिप्रकारकोयश्चिदचित्लोकश्चेतना चेतनभुवनंतस्यनिवहस्समूहस्तन्तथोक्तम्, (समूह निवहव्यूह संदोहविसरव्रजाइत्यमरः) शक्तिजलधेस्सामर्थ्यसमुद्रस्य, प्रतिकलयतोगणयतः, यस्य श्रीलक्ष्मणास्य, अन्तंपारम्, अनन्तस्यभावोऽनन्तत्वंतस्योच्छेदात्–असीममाहात्म्यनाशात्,श्रुतिरधिवेदोऽपि,नागमन्नायासीत्, तं श्रीलक्ष्मणमुनिंप्रपद्ये- चितांबद्धमुक्तनित्यभेदेन त्रैविध्यम्, अचितांप्रकृतिकालशुद्धसत्वभेदेन त्रैविध्यंमन्तव्यम् ।

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवंनिरतिशयमाहात्म्यंप्रतिपाद्येदानींस्वतःसर्वज्ञकल्पेनसर्वार्थावद्योतिना वेदपुरुषेणाप्यपरिच्छेद्यप्रभावत्वंप्रतिपाद्यते'महाश्चर्यागारमित्यादिनापद्येन' महाश्चर्य्यागारमित्यनेन 'मेघोदयःसागरसन्निवृत्तिरिन्दोर्विभङ्गाःस्फुरितानिवायोः। विद्युद्विभङ्गोगतिरुष्णरश्मे विष्णोर्विचित्राः प्रभवन्ति मायाः' इत्युक्तरीत्यान्यत्राप्यपरि दृष्टचराणां विस्मयावहपदार्थानाँसत्त्वंब्यज्यते । त्रिविधचिदचित्लोकनिवह'मित्यनेन बद्धमुक्तनित्यभेदेनजीवानां त्रिगुणकालशुद्धसत्वभेदेनाचेतनानाञ्चभेदो विवक्षितः । समुद्यन्नश्यन्तमित्यनेन यथार्हं षड्भावविकारा वोध्यन्ते । प्रतिकलयतः' इत्यनेन साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां परस्परासंकीर्णरूपेण ज्ञानेन सर्वज्ञत्वं व्यज्यते । शक्तिजलधे'रित्यनेन कार्य्योपयोग्यपृथक्सिद्ध विशेषण वैशिष्ट्यं प्रतिपाद्यते । अ-

तिरपि न यस्यान्तमगमदित्यनेन श्रूयते नित्यमिति श्रुतिरि
ति व्युत्पत्यनुसारेण पौरुषेयत्वगन्धरहितेन वेदेनापीयत्तावधा
रणं कर्तुं नशक्यत इति प्रतिपाद्यते । तत्रहेतुः 'अनन्तत्वोच्छे
दादित्यनेनोच्यते । इयत्तावधारणेहिअनन्तत्वमुच्छिद्येतेति ।
अत्रब्रह्मविदाप्नोतिपरमित्यारभ्य 'सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्मे
तिस्वरूपनिरूपकधर्मैब्र र्ह्म निरूप्य मनुष्यानन्दादारभ्यशतगु
णितोत्तरक्रमेणानन्दगुणपरिच्छेदंकर्तुमुद्यताऽपरिच्छेद्यतया
नन्दस्य तं परिच्छेत्तुमपारयन्ती 'यतोवाचोनिवर्तन्ते अप्राप्य
मनसा सह' आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्नविभेतिकुतश्चनेतिवाङ्
मनसागोचरतयाऽपरिच्छेद्यतां व्यञ्जयन्ती श्रुति रनुसन्धेया ।
तदनुसारिण्यश्च 'उपर्युपर्यब्जभुवोऽपिपूरुषान्प्रकल्प्यते येशत
मित्यनुक्रमात् । गिरस्त्वदेकैकगुणावधीप्सया सदास्थितानोद्य
मतोऽतिशेरते' आनन्दानन्त्यमाहश्रुतिरिहहियतोवाचइत्यादि
कास्या द्विश्रान्तिः श्रान्तिमात्रादितिच निगदितं यामुनाचार्य
वर्यैः । नह्यानन्दोमितःस्याद्विधिशतवचनेऽप्यस्यषष्ट्यान
भौवत्तत्वोक्त भूभृदणवो रुदधि पतितयो र्मज्जनेको विशेषः
इत्यादय आचार्यश्रीसूक्तयोऽप्यनुसन्धेयाः ॥ २८ ॥

(भाषार्थ) प्रथम उत्पन्न होकर पश्चात् नाशको प्राप्त हो
ते हुए बड़े भारी आश्चर्यके स्थान त्रिविधचेतन बद्ध—मुक्त
नित्य-तथात्रिविध अचेतन प्रकृति-काल-शुद्धसत्व-संसारको
अपने अगाध शक्तिसे गणना करने वाले जिन श्री लक्ष्मण

जीके अन्तको असीम माहात्म्यके नाशके भयसे वेद भी नहीं पा सका उन श्रीमान् दोनोंके रक्षक श्रीलक्ष्मणजीके शरण में प्राप्त हैं ।

(इत्यनेन सर्वसोमहीयस्त्वमाह)

पृथिव्याद्यावृत्त्युत्तरदशगुणो विश्वनिचयो–
यतोरोम्णांरन्ध्रे भ्रमतिवयसाणु स्समिव ।
यदङ्के ऽसौशेते कथयितुमलं कस्तदुदयं–
प्रपद्येश्रीमन्तं, कृपणशरणंलक्ष्मणमुनिम् ॥२६॥

(अन्वयः) पृथिव्याद्यावृत्त्युत्तरदशगुणः, विश्वनिचयः, यतः, रोम्णांरन्ध्रे वयसासमम्, अणुरिव भ्रमति असौ यदङ्के, शेते तदुदयम्, कथयितुं कः, अलम्, तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये–

(व्याख्या) पृथिव्यादीनां पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाना मावृतय आवरणानि, एव, उत्तरोत्तर मनुक्रमेणदशगुणा यस्य सः, विश्वस्यजगतो निचयोनिकरः, यतोयस्य, इतराभ्योऽपिदृश्यन्ते (सू०) पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्तइतिनियमादत्र षष्ठ्यन्तात्तसिल् बोध्यः रोम्णां तनूरुहाणाम्, रन्ध्रे छिद्रे, वयसाकालकृतावस्थया, समंसाकम्, अणुरिव परमाणुरिव, भ्रमतीतस्ततःसंचलति, असौप्रसिद्धः श्रीविष्णुः, यस्यशेष स्याङ्के क्रोडे, शेतेस्वपिति, तस्यशेषावतारस्य श्रीलक्ष्मणस्य, उदयमुत्कर्षम्, कथयितुं वर्णयितुम्, कोजनः, अलंसमर्थः, तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये–

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेव मनन्यसाधारणं सर्वाश्चर्यैकरं माहात्म्यं श्रुत्याप्यपरिच्छेद्य गुणगणानन्त्यञ्च प्रतिपाद्येदानीं भगवदपेक्षयाप्याधिक्यं वर्णयन्ति पृथिव्यादीति । तत्र भगवतः सर्वापेक्षया वैभवं प्रथमार्धेन प्रतिपाद्यते । "यदण्डमण्डान्तरगोचरञ्च यद्दशोत्तराण्यावरणानियानिचेतियामुनाचार्यानुगृहीतरीत्यापृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाहङ्कारमहद्रूपाणि यानि दशोत्तराण्यावरणानि तैर्वेष्टितोऽयंचतुर्दश भुवनरूपी विश्वनिकरो भगवतो विश्वव्यापकस्य श्रीमन्नारायणस्य रोम्णां विवरे कालकृतषड्भावविकारैः साकमनिरुद्धः परमाणुरिव परिभ्रमतीत्यनेन परमात्मस्वरूपापेक्षया दशोत्तरावरणावृत विश्वनिचयस्य परमाणुसादृश्य वर्णनेन भगवतो निरङ्कुशवैभवमचिन्त्यं व्यज्यते । इत्थं पूर्वार्धेन भगवतो विश्वनिचयस्यापि परमाणुसादृश्यापादनक्षमं वैभवं प्रकाश्येदानीं तादृशभगवतोऽप्यादिशेष शरीरैकदेशाङ्क प्रदेशशयनवर्णनेन भगवदपेक्षया प्याधिक्यं "यदङ्केऽसौशेते" इत्यनेन प्रतिपाद्यते । अथ "यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्नबिभेति कुतश्चन" इति श्रुत्याप्यपरिच्छेद्य महित्वेन कीर्तितं भगवन्त मपेक्ष्यापि श्रीशेषाधिक्यस्यसिद्धतया तदुत्कर्षः कैमुतिकसिद्ध इति पूर्वश्लोकार्थमुक्तहेतुना दृढयन्ति "कथयितुमलं कस्तदुदयमिति ।

(भावार्थ) पृथिव्यादिकों का उत्तरोत्तर दशगुणा आवरण है जिसमे ऐसा विश्व समूह कालचक्रके सहित जिनके रोमरन्ध्रोंमें परमाणु की तरह घूम रहाहै ऐसे श्रीमन्नारायण भी जिनके अङ्कमे सोतेहैं, अतः उनके अति विशाल स्वरूप गुणवैभवादि के अभ्युदय को कहनेके लिए कौन समर्थ हो सक्ता है ऐसे श्रीमान् दीनों के रक्षक श्रीलक्ष्मण जी के शरण मे प्राप्तहैं ।

(अनेन लक्ष्मणारामस्य विश्वतोऽपि गौरवमाह)

प्रपञ्चेवैरिञ्चेऽतिथिसुयजनंवैष्णवकुलं–
कदाचिन्नीवैंशार्चितरुचिरसौमित्रिविपिनम् ।
उपेत्य श्रीसीतारमणदयनीयोविजयते,
प्रपद्येश्रीमन्तं कृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम् ॥३०॥

(अन्वयः) वैरिञ्चे प्रपञ्चे, अतिथिसुयजनं वैष्णवकुलं नीवैंशार्चितरुचिर सौमित्रिविपिनं कदाचित्, उपेत्य श्रीसीतारमण दयनीयः (यः) विजयते तं श्रीलक्ष्मणमुनिं प्रपद्ये –

(व्याख्या) विरिञ्चेरिदंवैरिञ्चं तस्मिन् वैरिञ्चे प्रजापति निर्मिते, तस्येदमित्यण्, प्रपञ्चे विस्तरे,जगतिवा, अतिथिषु विषयेशोभनंयजनं यस्मिन्तत् अभ्यागतसमीचीनसत्कारम् विष्णोरिदंवैष्णवं विष्णुसम्बन्धिकुलं यस्मिन् तत् नीवैंशैर्वान्धवाधिपै रर्चितंपूजितं यत्सौमित्रिविपिनं लक्ष्मणारामम्, कदाचित् कस्मिन्नपिकाले, उपेत्य प्राप्य, श्रीसीता

रमणस्यदयनीयः श्रीसीतारमणदयनीयः श्रीरामचन्द्रकृपैकभाजनम्, यः श्रीलक्ष्मणः, विजयतेसर्वोत्कर्षेणवर्तते, तं श्रीलक्ष्मणमुनिंप्रपद्ये—

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवमेकोनत्रिंशत्पद्यैर्लक्ष्मणाख्यं कल्याणगुणगणमहोदधिमवतारान्तरैरवगाह्याश्रितजनवात्सल्यैकविवशतयालक्ष्मणारामे "विम्वाकृत्यात्मनाविम्वे समागत्यावतिष्ठते' इत्युक्तरीत्यार्चावताररूपेणावस्थितं श्रीलक्ष्मणं वर्णयन्ति 'प्रपञ्च' इत्यादिना पद्येन । तत्र लक्ष्मणस्यावतरणविषये इतरस्थलापेक्षयास्य स्थलस्य वैशिष्ट्यंप्रथमार्धेनोच्यते । प्रथमार्द्धेन सर्वस्याभ्यागतो गुरुरित्यभिहितरीत्या गुरुकल्पाना मभ्यागतानां प्रीणन मन्यत्रादृष्टचरमिहैव प्रवर्तत इत्येकोवैशिष्ट्यहेतु रभ्यधायि वैष्णवकुल मित्यनेन 'यत्रैकाग्र्यं भवति भगवत्पादसेवाचनादे र्यत्रैकान्त्य व्यवसितधियो यस्यकस्यापि लाभः, वासस्थानं तदिह कृतिनांभाति वैकुण्ठकल्पंप्रायोदेशा मुनिभिरुदिताः प्रायिकौचित्यवन्तः । साकाशीति न चाकशीतिभुविसायोध्येति नाध्यास्यते सावन्तीतिनकल्मषा दवतिसा काञ्चीतिनोदञ्चति । धत्तेसा मधुरेति नोत्तमधुरां नान्यापि मान्यापुरीया वैकुण्ठ कथासुधा रसभुजां रोचेत नोचेतसे' इत्युक्तरीत्यान्य मुक्तिक्षेत्रादप्युत्कर्षो व्यज्यते । राजपूजितताद्वितीयपादेन वर्ण्यते । कदाचिदित्यस्योपे त्येत्यनेनान्वयः । लक्ष्म

णारामस्य शोभायुक्ततया दृष्टिहरत्वं व्यज्यते। 'सौमित्रिवि पिन मित्यनेन स्वनाम्नैव प्रसिद्धि र्ध्वन्यते। 'सीतारमणादय नीय इत्यनेन सीतया रामेण चावतरणार्थं कृपया निय मितता व्यज्यते। विजयत इत्यनेन सर्वोत्कृष्टस्थानलाभात्स्व स्यापि सर्वोत्कर्षः प्रतिपाद्यते। तादेव मतिथि पूजनेन वैष्ण वाभिमानेन राजपूजिततया रुचिरतयाच स्थानस्य सर्वोत्कर्ष मवगत्यार्चावतार रूपेणावस्थितिः प्रत्यपादि ॥ ३० ॥

(भाषार्थ) ब्रह्माकी सृष्टिमे अतिथियोंका सन्मान है जिस में, और जहां वैष्णवोंका बृन्द विद्यमान है और जो रीवां नरेशसे सर्वकालमे पूजित है ऐसे श्रीलक्ष्मणबागमें श्रीराम चन्द्रजीके कृपापात्र जो (श्री लक्ष्मणजी) किसी कालमे प्राप्त होकर सर्वोत्कर्षसे विराजमान हैं उन श्रीमान् दोनोंके रक्षक श्रीलक्ष्मणजी के शरण मे प्राप्त हैं।

(एतेनप्राचीनराजर्षि गणाद्बान्धवपतेर्गरीयस्त्वमाह)

दिलीपाद्यैर्भूपैरपि तनयसन्नामकरणे,
ष्वदेयाँ श्रीरीवाँधिपवर गुलावो गुरुकरे।
यदाप्त्यैदत्वादीव्यति सुविभुतांचामरयुतां,
प्रपद्ये श्रीमन्तंकृपणशरणं लक्ष्मणमुनिम्।

(अन्वयः) श्रीरीवाँधिपवरगुलावः, दिलीपाद्यैः, भूपैर पि,तनयसन्नामकरणेषु, अदेयां चामरयुतां विभुतांयदाप्त्यै गुरुकरे दत्वा दीव्यति तं श्री लक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये—

(व्याख्या) रीवाया अधिपास्तेषुवरः सचासौगुलाबश्च श्री वान्धवेशगुलाबसिंहः, दिलीपाद्यैर्दिलीपप्रभृतिभिः, भूपैरपि नृपैरपि, तनयानां सन्नामकरणेषु पुत्रशुभनामकरणादिषु, अदेयामनतिसर्जनीयाम्, चामराभ्यांयुतां बालव्यजनसहिता म्, सुविभुतांशोभनविभूतिम्, यस्य श्रीलक्ष्मणस्य,आप्त्यैसा त्तात्कृत्यै, गुरोः करेगुरुकरे आचार्य्यपाणिपद्मे, दत्वाप्रदाय दीव्यति सुखमनुभवति, तं श्रीलक्ष्मणमुनिम् प्रपद्ये–

(तात्पर्यं विवरणम्)

इदानीं श्रीलक्ष्मणप्रसादासादनाय श्रीमता गुलाबसिंहाभि धामरीवानरेशेन तनयसन्नामकरणे श्रीस्वामिनोः करारविंद योः समग्रस्य लक्ष्मणाग्रामविराजमानगुरुस्थानाधिपत्य स्यवि तरणाख्यं वृत्तान्तं निवध्नन्ति दिलीपाद्यै रित्यादिनापद्येन दिलीपादिभ्योऽप्यतिशयितत्वं राज्ञः प्रतिपाद्यते प्रथमार्धेन दिलीपादयोहि तनयसन्नामकरणादिषु शुभनिमित्तेषु 'अदेय मासीत्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभंछत्रमुभेच चामरे इत्युक्तरीत्या राजलक्षणभूतच्छत्रचामरव्यतिरिक्तमन्यत्सर्वं वितेरुः अयं पुनर्महाराजः पुत्रनामकरणमहोत्सवे चामरयुतां सुविभुतां वितताररेति दिलीपादिभिरदेयस्यार्थस्य समर्पणेन तेभ्योऽ प्युत्कर्षो व्यज्यते, चामरग्रहणं छत्रादीना मप्युपलक्षणम् य दाप्त्यै इत्यनेनैतादृशसमर्पणस्य लक्ष्मणप्रसादार्थत्वबोधना त्सात्विकत्यागो व्यज्यते । दीव्यतीत्यनेन सर्वेषामपि कार्य्या

णां स्वामिभिरेव निर्वहणा न्निश्चिन्तं विधीयमानाः संभावितास्सर्वेऽपि 'दिवु' धात्वर्था बोध्यन्ते ॥ ३१ ॥

(भाषार्थ) श्रीमान् महाराज गुलावसिंह जू देव दिलीपादि महाराजाओं से भी स्वपुत्र नामकरणादि मे अदेय छत्रचामरादि सहित सुन्दर ऐश्वर्यको जिन (श्रीलक्ष्मण जो) के प्रसन्नता के ही लिए गुरु के हांथ मे देकर आनन्दित हैं उन श्रीमान् दीनोंके रक्षक श्रीलक्ष्मण जी के शरण मे प्राप्त हैं।

(भावार्थ) जब महाराजा दिलीप के पुत्र (रघु) हुए थे उस समय शुभ समाचार सुनाने वाले को छत्र और दो चामरों के अतिरिक्त और कोई वस्तु अदेय नहीं हुई, किन्तु महाराजा गुलाव सिंह जू देव ने स्वपुत्र मार्तण्ड सिंह जू देव के नाम करणके समय छत्र चामरादि भी गुरूके हांथ मे समर्पण कर दिया, इस विषय का वर्णन भली भांति कविकुल तिलक कालिदास जी ने किया है। यथा—अदेयमासी त्त्रयमेवभूपतेः शशिप्रभंछत्र मुभेचचामरे, इत्यादि

श्रेयत्कस्तनयोऽपिवान्धवजनोल्लास स्तमोदुन् पान्—
जित्वादिग्वनिताःकरैर्भृ शमलं कुर्वन्सममसूनुना॥
श्रीगोविन्दगुलावकीर्तिसुरभें, भूत्वान्यदेशाधिपो—
मार्तण्डःप्रणमन्भवन्तमनिशं श्रीलक्ष्मणांसेवताम्,

(अन्वयः) कीर्तिसुरभे श्रीगोविन्द गुलाव वान्धवजनोल्लासः

श्रैमत्कः तनयः, मार्तण्डोऽपि सूनुनासमं तमोदुर्नृपान्, जित्वा, अन्यदेशाधिपः, भूत्वा, दिग्वनिताः करैः, अलंकुर्वन्, भवन्तं भृशंप्रणमन्, अनिशं श्रीलक्ष्मणं सेवताम्–

(व्याख्या) कीर्त्यायशसा सुरभिर्मनोज्ञस्तत्सम्बुद्धौ हेकीर्ति सुरभे. श्रीगोविन्द गोविन्दसिंह, हेगुलाव श्रीगुलावसिंह, वान्धवनरेश, (गोविन्दसिंह इति वान्धवेशस्य वैष्णवीय पञ्चसंस्कारोत्पन्नंनाम) वान्धवजनानुल्लासयतीति वान्धव जनोल्लासोवान्धवराज्यप्रजाप्रमोदवर्द्धकः, श्रीमतश्चयं श्रैमत्कः भवदीयः, तनयः पुत्रः, मार्तण्डोऽपि मार्तण्डसिंहोऽपि सूनुना स्वपुत्रेण समं साकम्, तमांसीवदुर्नृपा स्तमोदुर्नृपा स्तान्तमोदुर्नृपान्, तिमिरमहीपालान्, जित्वावशीकृत्य, अन्यदेशस्याधिप अन्यदेशाधिपः जनपदान्तरस्वामी, भूत्वा, दिशइववनिता दिग्वनिता आशाङ्गनाः, करैर्निजपाणिपद्मैः, अलङ्कुर्वन् विभूषयन्, भगवन्तंत्वां भृशमत्यन्तम् प्रणमन् परिचरन्, अनिशंनिरन्तरम्, श्रीलक्ष्मणम्, सेवताम्, श्रयताम्, एतेनभवान् दिग्विजयिनापुत्रेण पौत्रेणच साकमनन्तकालं राज्यसुखमनुभवत्विति नितरामाशीर्वादोक्तिर्व्यज्यते–

अथवा, गुलावस्य कीर्तिरिवसुरभिः कामधेनुर्यस्य तत्सम्बुद्धौ हे गुलावकीर्तिसुरभे, तयैवधेन्वा वृन्दारण्ये अभिषिक्तः सगोविन्द इतिसंज्ञां लब्धवान्,) अथवा गुलावस्य कीर्तिरेव सुरभिर्घ्राणतर्पणं यस्यतत्सम्बुद्धौ हेगोविन्द अवताराभेदेन

हे श्रीमन्नारायण, बान्धवजनान् विष्णुभक्तानुल्लास यतीति-बान्धवजनोल्लासः, (बान्धवा विष्णुभक्ताश्चेत्यनुसन्धेयम्) श्रीमत अयं श्रैमत्कोभावत्कः, अपि तनयः पुत्रः मार्तण्डः श्री सूर्य्यः, (चक्षोः सूर्य्योऽजायतेति श्रुत्यनुसारेण श्रीसूर्य्यस्य भगवन्नेत्रादुत्पत्तिरत स्तदीयत्वेनव्यवहारः) सूनुनास्वपुत्रेण समम्, तमान्सिदुर्नृपाङ्गवतान्, जित्वा विनाश्य, अन्यदेशाधिप आकाशातिरिक्तपातालस्यापि अधिपःस्वामी, भूत्वा, दिशोव निताइव ताः, करैः किरणैः, (बलिहस्तान्शवः कराइत्यमरः) अलंकुर्वन् प्रकाशयन्, भवन्तमभृशंप्रणमन्, उदयास्त व्याजेने ति भावः, श्री लक्ष्मणम, सेवताम, अथवा, हेगुलाबकीर्तिसु रभे, हेगोविन्द कृष्णचन्द्र, बान्धवजनोल्लासः यदुवंशिप्रजा नुरञ्जकः, श्रैमत्कः, तनयः, प्रद्युम्नोऽपि, मार्तण्डःसन् सूर्य्यस मानवर्चस्कः, सूनुनापुत्रेणसमम, तमोदुर्नृपान्, तिमिरमहीपाला न्जित्वा, अन्यदेशाधिपः षट्पुरादिजनपदान्तरपालकः, भूत्वा, दिग्वनिता आशाङ्गनाः, करैर्निजपाणिसरोरुहैः, अलंकुर्वन्, भवन्तंवाम, भृशम, प्रणमन्, अनिशम, श्रीलक्ष्मणमवता रान्तरेणश्रीबलभद्रम, सेवताम,

अथवा, गुलाबकीर्तिसुरभे, हेगोविन्द श्रीरामचन्द्र अस्मिन्प क्षेचोक्तद्वितीयव्याख्या गुलाबस्यकीर्तिरेवसुरभि घ्राणत र्पणंयस्येत्यनुसन्धेया, बान्धव जनोल्लासः रघुवंशिभूपालप्रमो दकारी, श्रैमत्कः तनयः कुशोऽपि मार्तण्डःसन्, सूनुनास्वानुजे

नसमम् तमोदुर्नृपान्जित्वा, अन्यदेशाधिपः, भूत्वा,विन्व नताः, करैः अलंकुर्वन् भवन्तंत्वाम्भृशम् प्रणमन् अनिशम् श्रीलक्ष्मणम् सेवताम् अज्ञातसम्बन्धेन श्रीलक्ष्मणसंग्राममेवि जित्यापिजनन्युपदेशेनज्ञातसम्बन्धं श्रीलक्ष्मणं सेवतामिति तात्पर्य्यम्

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवंचामरयुताधिपत्यसमर्पणरूपं वृत्तान्तमभिधायग्रन्थान्ते पुत्रपौत्रादिसमेतस्य श्रीमतो महाराजस्यपुत्राद्याशीर्वादमुखे नमंगलाभिवृद्धिमाशासते श्रैमत्क इत्यादिना पद्येन । राजकु मारस्य 'मार्तण्ड'इति संज्ञांसूर्यसाधारणगुणवर्णनेनान्व र्थी ध्वनयन्तो राज्याभिवृद्धिपितृभक्तिगुरुभक्तिदेवभक्तिप्र भृतीनेकोक्त्यैवाशंसन्तेश्रैमत्कस्तनयोऽपीति धर्मिनिर्देशः अपि शब्देनेतरेषांसमुच्चय आशास्यमान विषयानां कुलक्रमागतसर्व महीपाल निष्ठत्वंवाबोध्यते बान्धवजनोल्लासः इत्यनेनयथा दिवसकरस्सर्वानपिजनान् बान्धवदभिमत्योल्लासयति तद्वद यमपि बान्धवराज्यास्थितानां प्रजानां सन्तोषाभिवर्द्धकोभव त्विस्याशास्यते । तेन ,राजा प्रकृतिरञ्जनात्' इत्युक्तरीत्यान्वर्थ शब्दबोध्यत्वं सिध्यति तमोदुर्नृपाञ्जित्वेत्यनेन यथा सूर्यःत मांस्यभिभवति तद्वदयमपि दुष्टान् नृपाञ्जयत्विति ज्ञाप्यते तमो दृष्टान्तेन सहस्रभानो परिश्रम मन्तरा तमोनिरास सिद्धिवत्तत्सारथिनारुणेनैव तन्निरसनवच्चेहापि परिश्रमं

क्तिर्नैवजयावाप्तिःसैनिकैरेवजयसाधनञ्चव्यज्यतेदुर्नृपानितिदुर्शं
ब्देननृपाणांदुष्टत्वस्यबोधनाद्दण्ड्यानामेव दण्डनस्य ध्वननेन
"अदण्ड्यान् दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्, अयशोमह
दाप्नोतिनरकञ्चैवगच्छति" इत्युक्तदोषास्पृष्टत्वंव्यज्यतेदिग्वनिता
करैर्मृशमत्वंकुर्वन्नित्यनेनयथासहस्रमरीचिर्दिगन्तपर्य्यन्तंमयूखै
र्व्याप्नोति तद्वदयमपिदिगन्तपर्य्यन्तं विस्तृतराज्योभवत्वित्या
शास्यतेकिञ्चकरशब्दस्यप्रजादेयद्रव्यपरतया दिगन्तवास्तव्याः
प्रजा अप्यस्मै करान्दद्युरित्याशासनेन राज्यस्य दिगन्तव्याः
पित्वंकिम्पुनर्न्यायेन सिध्यति। समं सूनुनेत्यनेनाजहल्लक्षणया
भाविनां सर्वेषामपि राज्ञां मंगल माशासितं भवति।
"श्रीगोविन्दगुलावेति" अधुनातन महाराजस्य संबोधनम्।
कीर्तिसुरभे, श्रीमत्क इत्यनेनच साम्राज्य परिपालनादिभि
रधुनातन महाराजस्य दिगन्तविस्तारि कीर्तिसुरभिलत्वस्य
श्रीमत्त्वस्य च बोधनेनैतद्वंशीयानाँ पूर्वेषां पश्चात्तना
नामपिराज्ञां कार्यकारणयोः समानगुणकत्व नियमेनाशास्यमान
मंगलाना मवश्यंभूततायाअवश्यंभाविताया श्च व्यञ्जनेनाशी-
र्वादस्यामोघता ध्वन्यते। अन्यदेशाधिपो भूत्वेत्यनेन दुर्नृप-
जयफल मन्यदेशाधिपत्य मुच्यते। मार्तण्ड इति पश्चान्ना
मग्रहणेन सूर्यगुणयोगेन नाम्नोयाथार्थ्यं सिद्धमिति
व्यज्यते। प्रणमन् भवन्तमिति पितृभक्तिः श्रीलक्ष्मणं सेवता
मिति देवभक्तिस्तेनैव लक्ष्मणारामवास्तव्यगुरुभक्तिश्चेति

भक्तित्रितय माशासितं भवति । अनेनश्लोकेन प्रजारञ्जकत्वं दुर्नृपजेतृत्व मन्यदेशाधिपत्यं पितृभक्तिर्देवभक्तिर्गुरुभक्ति रित्येते अन्येऽपि नान्तरीयका अर्था आशासिता इति सिद्धम् ॥ ३२ ॥

(भाषार्थं) कीर्तियोंसे मनोहर गोविन्दसिंहोपनामक हे महाराज गुलावसिंह जू देव बांधव राज्यके प्रजाको आनन्दित करने वाले आपके पुत्र चिरंजीव श्रीमार्तण्ड सिंह जू देव जी अपने पुत्रको साथ मे लेकर अन्धकार स्वरूप (अज्ञानी) दुष्ट नरेशोंको जीत कर तथा अन्यदेशोंके अधिप होकर दिग्वधूटियों को अपने करकमलों से अलङ्कृत करते हुए आप मे अतिशय अगाढभक्ति रखते हुए निरन्तर श्रीलक्ष्मण जी की सेवा करैं।

इस श्लोकके अन्यभी तीन अर्थ विष्णु–कृष्ण–राम–के पक्ष के हैं जो संस्कृत टीका मे भली भांति समझाए जा चुके हैं। विस्तार भयसे उनका हिन्दी मे अनुवाद नहीं किया गया।

एतेनग्रन्थान्ते मंगलमाचरणीयमित्युक्तप्रकारेणाशीर्वाद रूपंमङ्गलमाह–

आम्नायदेववनपुष्पमहीपजात–
श्रीसम्प्रदायमकरन्दमहाब्धिमग्नाः–
सूरीन्द्रवृन्दमधुपावलयोरमन्तां

गोविन्दकीर्तिकृतिबान्धवराजधान्याम् ॥ २३ ॥

(अन्वयः) आम्नायदेववनपुष्पमहीपजातश्रीसम्प्रदाय मकरन्दमहाब्धिमग्नाः सूरीन्द्रवृन्दमधुपावलयः गोविन्द कीर्तिकृति, बान्धवराजधान्याम्, रमन्ताम्,—

(व्याख्या) आम्नायोवेदएव देवबनममरोद्यानं मन्यत्राम्नाय इवदेववनं लक्ष्मणारायन्तत्रयः पुष्पमहीप उपनिषद्भागोऽन्यत्र गुलाबसंज्ञकस्तस्माज्जात उत्पन्नः अन्यत्रविवर्द्धितो, यः श्रीसम्प्रदायः सएव मकरन्दः श्रीसिद्धान्तरस स्तस्यमहाब्धि-र्महासमुद्र स्तस्मिन्मग्नाः संसक्ताः सूरीन्द्रवृन्दामधुपाइव अन्यत्रसूरीन्द्रबृन्दा इवमधुपा स्तेषामावलयः श्रेणयः, गोविन्द कीर्तिकृति भगवद्यशःप्रकाशिकाया मन्यत्रगोविन्दसिंह प्रशंसाविष्कारिकायाम्, (गोविन्दसिंहइति रीवांनरेशस्य वैष्णवीयपञ्चसंस्कारोत्पन्नंनाम) श्रीलक्ष्मणेसंघटतेहिबन्धोः स्नेहेनबध्नातियतोऽयमर्थइति बचनानुसारेण वन्धुत्वं श्रीलक्ष्मणएव संघटतेततश्च बन्धोरिमेवान्धवा श्रद्दत्तारान्तरेण रामानुजीया स्तेषांराजधान्यां श्रीरामानुजसिद्धान्तकथायाँ प्रसिद्धायां तन्नामक राजधान्याञ्च, रमन्तां विहरन्तु—

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवं सकुटुम्बस्य श्रीमतो महाराजस्य मंगलमाशास्येदानीं ग्रन्थान्ते वैष्णवानन्दोद्देश्यकाशीर्वादरूपं मंगलंनिवध्नन्ति "आम्नायेत्यादिना पद्येन"। देववनं यथा नानाजाति भिन्नानां

सर्वेषामपि पक्षिणां भृङ्गाणाञ्च फलमकरन्दप्रदानेन पान्थानाँ छायादिप्रदानेन सन्तोषमभिवर्द्धयति । तथा वेदोऽपि ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणाँ सर्वेषामपि चातुर्वर्णिकानाँ ॐकारीर्यादिभि ज्योंतिष्टोमादिभिश्चैहिका मुष्मिक फलल-म्भनेन सुखमभिवर्द्धयतीति आम्नायस्य देववनत्वेन वर्णनाद् ध्वन्यते । पुष्पमहीप इत्यनेन कुसुमप्रधानवृक्षस्थाने उपनिषद्भागो निर्गीर्याध्यवस्यते ।

उपनिषद्भागावष्टम्भेन संशयविपर्ययंध निरसनपूर्वक मधिक रणागर्यैर्निर्धारितस्य श्रीसंप्रदायस्य मकरन्दत्वेन वर्णनात्स्वतो-हृद्यत्व ममन्दानन्दजनकत्व मित्यादिकं व्यज्यते । रसाब्धिमग्ना इत्यनेन श्रीसंप्रदायनिर्धारितनानाविधप्रतितंत्रादि-सिद्धान्तान् मनवरतं "सन्तोषार्थं विमृशति मुहुः सद्भिरध्या सविद्यां नित्यं ते निशमयति च स्वादुसुव्याहृतानि" इत्युक्तरीत्या परिशीलिन स्तदेकनिरतात्मानः श्रीवैष्णव परमैकान्तिनः प्रतिपाद्यन्ते । सूरीन्द्रवृन्दमधुपावलयो रमन्तामिति पण्डितेन्द्राणाँ मधुकरत्वेन वर्णनात् "बहुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यो मतिमान्नरः । सर्वतः सार मादद्या त्पुष्पेभ्य इव षट्पद, इत्युक्तरीत्या सर्वतःसारसंग्रहीतृत्व रूपो माधुकरोगुणोव्यज्यते । गोविन्दकीर्तिकृतीत्यनेन सर्वतो भगवद्भागवतालय समृद्धतया भगवत्कीर्तिप्रसार-

टि० (ॐ कारीरी यज्ञविशेषः),

कतया भागतानामावासस्यानुगुणता बान्धवराजधान्या उच्यते । रमन्तामित्याशिषि लोटाशीर्वादरूपमंगलाचरणं व्यज्यते ॥ २३ ॥

(भाषार्थं) वेद रूपी जो देवोद्यान तत्सम्बन्धी जो पुष्प महीप (उपनिषद्भाग) उससे उत्पन्न जो श्रीसम्प्रदाय रूपी मकरन्द (पुष्प रस) उसके समुद्र मे मग्न जो मधुप (भ्रमर) श्रेणियों के तरह सूरीन्द्रवृन्द (विद्वद्वृन्द) वे भगवान् की कीर्ति को प्रकाशित करने वाली श्रीरामानुज सिद्धान्त कथा मे सदैव अनुरक्त रहैं । द्वितीय अर्थ-वेद की तरह जो लक्ष्मणबाग उससे उत्पन्न जो पुष्प महीप (गुलाव) (गुलाबसिंह महाराजा) उनसे प्रवर्तित जो श्रीसम्प्रदाय सम्बन्धीमकरन्द (पुष्परस) का समुद्र उसमे मग्न मधुप (भ्रमर) श्रेणियों की तरह जो विद्वद्वृन्द वे गोविन्दसिंह (गुलाबसिंह) के कीर्ति को प्रकाशित करने वालीबान्धव राजधानी मे सदैव विचरते रहैं ।

(इत्यनेन स्वकृतिसाफल्यमाह)

केचिद्विपश्चित्प्रवरा महान्तो-
निर्मत्सराः सन्त्यधुनाऽपिशान्ताः-
मत्वेतिसूक्तं बदरीशतुष्ट्यै-
श्रीलक्ष्मणस्तोत्रम भीष्टपुष्ट्यै ॥ २४ ॥

(अन्वयः) महान्तः, निर्मत्सराः शान्ताः केचित् विपश्चित्

प्रवराः, अधुनापि, सन्ति, इति मत्वा, बदरीशतुष्ट्यै, अभीष्टपुष्ट्यै, (च) श्रीलक्ष्मणस्तोत्रं सूक्तम्—
(व्याख्या) महान्तः प्रतिष्ठिताः, निर्मत्सराः मात्सर्यरहिताः शान्ताः शमदमादिगुणयुक्ताः, केचित् विरलाः विपश्चित्सु प्रवराः विपश्चित् प्रवराः विद्वद्वराः, अधुनापि इदानीमपि, सन्ति वर्तन्ते, इतिमत्वा विचार्य, बदरीशस्य तुष्ट्यै बदरीश तुष्ट्यै बदरीनारायणप्रसादार्थम्, अभीष्टानां पुष्ट्यै अभीष्ट पुष्ट्यै मनोरथसाफल्याय, श्रीलक्ष्मणस्तोत्रम् सूक्तं सम्यगुक्तम् बदरीशतुष्ट्यै, इतिपदेन सूक्ष्मतया ग्रन्थकृन्नाम्नोऽप्यभिधानम् बोध्यम् यदस्य स्तोत्ररत्नस्यकर्तारः श्री १०८ श्रीस्वामि बदरीप्रपन्नाचार्याः इति सर्वैं रवगन्तव्यम्—

(तात्पर्य विवरणम्)

तदेवं महाराजभागवतानामाशीर्वादरूपमंगलं विरच्येदानीं स्वग्रन्थस्य निर्दोषपन्डितोपादेयतया श्रीमन्नारायणप्रसाद जनकतया तद्द्वारा स्वस्यान्येषाञ्चाभीष्टपुष्टिसाधकतया चसाफल्यं निबध्नन्ति केचिद्विपश्चित्प्रवरा इति पद्येन । पूर्वार्द्धेन "येनामकेचिदिहनः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्ति ते किमपितान् प्रतिनैषयत्नः । उत्पत्स्यते ममतुकोऽपि समानधर्मा कालोह्ययं निरवाधिर्विपुलाच पृथ्वी । सारासारविवेकज्ञा

गरीयांसो विपश्चितः । प्रमाणतन्त्राः सन्तीतिकृतो वेदार्थ संग्रहः" इति भवमूर्तिभाष्यकाराभिहितच्छायया निर्दोष पण्डितानां सत्ता प्रतिपाद्यते। केचिदित्यनेनास्मि न्दुरितल- तिकोपपद्यमाने कलिकाले तादृशपंडितानां वैरल्यंख्याप्यते। विपश्चित्प्रवरा इत्यनेन विविधं पश्यञ्चित्व विपश्चित्वं मित्यु- क्तावयवार्थो वोध्यते। महान्त इत्यनेन "मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मना,, मित्युक्तरीत्या त्रिकरणैकरूप्यं वोध्यते। निर्मत्सरा इत्यनेन "नात्रातीवचकर्तव्यं दोषदृष्टिपरं मनः । दोषो ह्यविद्यमानोऽपि तच्चित्तानां प्रकाशते" इति कुमारि- लभट्टोक्तरीत्या मात्सर्य्यस्त्यागो वोध्यते। शान्ता इत्यनेन शमदमादिगुणयुक्तताया वोधनात् "शमार्थं सर्वशास्त्राणि विहितानि मनीषिभिः । सएवसर्वशास्त्रज्ञः यस्यशान्तं मनः स्सदा" इत्युक्त्या शान्तिरुच्यते। वदरीशतुष्ट्यै,इति, अष्टाक्षर परमाचार्य्यप्रसादः प्रार्थ्यते अभीष्टपुष्ट्यै, इति, सर्वार्थ साधकत्वं ग्रन्थस्याशास्यते इति मङ्गलम् ।

(भाषार्थ) इर्ष्यारहित शान्त तथा वड़े २ विद्वद्शिरो- मणि इस समय (कराल कलिकाल) मे भी वर्तमान हैं ऐसा मान कर अपने मनोरथ के सिद्धि के लिए और भगवान् के प्रसन्नता के लिए सुन्दर यह श्रीलक्ष्मण स्तोत्र रचा गया।

एकोनविंशतितमे हायनेऽशीति संयुते—

चैत्रेरामनवम्यां श्रीलक्ष्मणस्यस्तुतिःकृता ॥

सम्बत् १९८० चैत्रशुक्ल रामनवमी को इन श्लोकों से श्रीलक्ष्मणजी की स्तुति कीगई, अर्थात् श्रीलक्ष्मण स्तोत्रका निर्माण हुआ—

(समाप्तमिदं स्तोत्रम्)

—शुभंभूयात्—

(प्रस्तावना)

एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग्ज्ञातः स्वर्गेलोकेच कामधुग्भवतीति अर्थात् एक भी शब्द भलीभांति प्रयुक्तकिया गया और जानागया है तो वह इसलोक उसलोक दोनोंमें मनोरथ पूर्णकरता है, इस से संस्कृतसाहित्य का महत्व कितना है इसबातका स्वयं पता चलजाता है, संस्कृत भाषा देवभाषा है, यह भाषा मानवसमाजकी अधिष्टातृ देवता है इसका अनुसन्धान प्रत्येकव्यक्तिके हृत्पटलमे निरन्तर जागृत रहना चाहिए यही मानवजाति को सन्मार्गमें लेजानेका सीधोपन्था है, इस बातका उपदेश आचार्यों द्वारा किसी न किसी रूपमें सर्वदाही मिला करता है, उनके उपदेशामृत "गुरूणां बचनं पथ्यं" इसके अनुसार अवश्य हितकर हैं, इतनाही नहीं किन्तु "आव्यंसदा किंगुरुवेदवाक्यं" इसके अनुसार वेही धर्म भी हैं—

एवञ्च आचार्योंके बचनामृत चाहे जिस विषय के हों किन्तु उनसे कुछ न कुछ उपदेश अवश्य मिलेगा एतदर्थ पूज्यपाद श्री १०८ श्री स्वामीजी महाराज लक्ष्मणाचार्य द्वारा निर्मित, रत्नोंकी भांति इतस्ततः विक्षिप्तपद्योंको एकत्रित कराकर माला की तरह अपने कन्ठको अलंकृत करनेके लिये तथा "गुरुं प्रकाशयेद्धीमान्" इस पद्यको अक्षरशः चरितार्थ करनेके लिए श्रद्धालु प्रकाशक जी द्वाराइसका मुद्रण

कराया जाना बहुतही अभिनन्दनीय कार्य हुआ है, निनो निर्दिष्टपद्योंका समय २ पर निर्माण कर तत्तद्विषयोंसे लभ्क का अतीव मनोरञ्जन किया गया है पद्योंकी रचना साहित्य से परिपूर्ण है और विशिष्ट २ नर रत्नोंके सद्गुणोंसे सम्बन्ध रखनेके कारण लोकोपकारिणी भी है, जिसके अवलोकन सेही उसका महत्वज्ञान हो जायगा विशेष लिखना व्यर्थ है—यद्यपि प्रस्तुतपद्य समय २ पर पत्ररूपमें प्रकाशित हो चुके हैं परन्तु पृथक् २ मुद्रित होनेके कारण इनका अस्तित्व सदैव बना रहना और लोकका उनसे समय २ पर मनोरञ्जन होना अति कठिन है एतदर्थ इन्हे पुस्तकाकार छपवाकर लक्ष्मणस्तोत्रके अन्तमे इनकी भी जिल्दबन्दी करा दी गई है न कि लक्ष्मणस्तोत्र और इन पद्योंसे कोई सम्बन्ध है, इसके अतिरिक्त अत्युपयोगी बहुमूल्य विषय एक और भी इस पद्यावलीके प्रथम रख दिया गया है जिस विषयके इस समय सूक्ष्म रूपसे प्रकाशन होनेकी बहुत ही आवश्यकता थी वह विषय है वैदिकपञ्च संस्कारोंका प्रमाणपूर्वक उल्लेख तथा उसके उपादेयताका सारांश विचार, इसीके साथही साथ एकादशी जन्माष्टमी रामनवमीका सूक्ष्म तया निर्णय भी रख दिया गया है जिसके विना किसी भी धार्मिक मनुष्यका कामही नहीं चल सकता, इन तिथियोंके निर्णयके लिए पहिले अनेक ग्रन्थोंकी आवश्यकता रहती थी

जो प्रत्येक व्यक्तिको सहज मे नहीं मिल सकते मिलें भी तो समझमे नहीं आ सकते अतएव अनेकों ग्रन्थोंसे उद्धृतकर काम काम की बातें यहां रख दी गई हैं और उनका सर्व साधारणके हितार्थ सरलभाषामे मर्म भी खोल दिया गया है पञ्चसंस्कारोंके प्रमाण भी इसी तरह सहज हिन्दीमे समझाए गए हैं एवञ्च इस एक छोटी सी पुस्तकसे न जानें लोकका कितना बड़ा उपकार होगा जो बातें अनेक श्रुतिस्मृतिपुराणादि देखने पर बड़े कठिनतासे प्राप्त होती थीं उनकी प्राप्ति अब इस पुस्तक के द्वारा सभीके हस्तगत है, न किसी प्रकारका प्रयास है और न मूल्य देकर खरीदना हैं पुस्तक स्थानसे विना मूल्य मिलेगी विषय बहुमूल्य है इत ने पर भी यदि इसके द्वारा लाभ न उठाया गया तो इससे बढ़कर और कौन सी भूलहै अस्तु अब इसके विचार करनेकी आवश्यकता है कि इसका प्रकाशन कैसे और किसके द्वारा हुआ इसके लिये यह पहलें ही विचार लेना चाहिये कि यदि ऐसा अमूल्य धार्मिक विषय तथा इस प्रकारके साहि त्यगर्भ पद्यरत्न एकत्रितकर प्रकाशित किये गए हैं तो इनके प्रकाशक भी धार्मिक तथा मानवभूषण ही कोई व्य क्ति होंगे क्योंकि "रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन" अर्थात् सुवर्णके ही द्वारा रत्नोंका प्रकाश होना सर्वत्र पाया जाता है इत्या दि विचारोंसेही प्रकाशकका विकाश स्वयं हो जाता है पर

स्तु आपका शुभनाम भी यहाँ लिख देना सबके लिये सन्तोष जनक है इसके प्रकाशक हैं श्रद्धालु वैष्णववीर स्वामि भक्त श्रीयुत भैय्या सा० लाल बलवन्त सिंहजी देवराज नगर रीवां, आप के गुणों तथा कीर्तिकलापोंसे विज्ञगण स्वयं परिचित हैं, आपमें धार्मिकता तथा श्रीवैष्णवता का भाव वंशपरम्परासे ही सिद्धहै एवञ्च आपके द्वारा इसका प्रकाशन इसके जन्म सफल करनेका अद्वितीय हेतु है अस्तु अब मै विशेष न लिख कर इस पुस्तकके अमूल्य विषयोंके मनन करनेके लिए धार्मिक सज्जनोंसे सनम्र निवेदन कर इस संग्रहात्मक पुस्तक का हृदयसे स्वागत करता हूं, संग्रह सम्बन्धी कार्यों में पं० रामदुलारे जी पौराणिक लक्ष्मण बाग का प्रसन्शनीय उद्योग था अतः आप अनेक धन्यवाद के पात्र हैं।

सं० १९८३ गयाप्रसादशर्मा शास्त्री—
लक्ष्मणबाग,

(साहित्य भूषणः)

—:o:—

श्रीमतेरामानुजाय नमः,
(तप्तमुद्रादिधारणमाहात्म्य)

इस संसारमे जितने लौकिक वैदिक कर्म हैं उनके ज्ञानके लिये प्रत्येक व्यक्तिको उपदेशककी आवश्यकता अवश्य रहती है विना उपदेशक छोटेसे छोटे और बड़े से बड़े लौकिक या वैदिक कार्य किसी प्रकार सम्पन्न नहीं हो सक्ते लौकिक कार्यों के लिए तो यहां तक है कि अपरिचित प्रदेशमें जाने वाले व्यक्तिको मार्ग तक पूँछनेकी आवश्यकता पड़ती है यदि वह किसी जानकार मनुष्यसे मार्ग न पूछे तो उसका निर्दिष्ट स्थल पर पहुचना हो दुस्तर है इसी प्रकार संसारमे यावत्कलाकौशलकी शिक्षा भी विना उपदेशक नहीं मिलती पुस्तकों में लिखे रहने पर भी जब तक गुरूके द्वारा उसका मर्म नहीं खोला जायगा तब तक उस क्रियासे किसी प्रकार फलही न निकलेगा, एवञ्च संसार में जो जिस कोटिका काम है उसकार्यके लिए तदनुसार शिक्षककी आवश्यकता है और उसीके बतलाए हुए मार्ग पर चलनेसे कार्य में सफलता की आशा हैं क्योंकि लिखाहै "आचार्य्याद्धैवविद्याविदिता साधिष्टंप्रापत्" अर्थात् आचार्य द्वाराही प्राप्त विद्या सफल होतीहै। सफलताके बाद शिक्षक के उपकारस्मरणमें आजन्म मनुष्यको तत्पर रहना पड़ता है यही उपकारस्मरण विद्याकेसफलताका हेतु भी

है उपकारस्मरण तो मनुष्यको यहाँ तक रखना पड़ता है कि चाहे वह मनुष्य शत्रुहो या मित्र हो जिसके सामने या जिसके द्वारा अपने को कुछ उत्तम शिक्षा प्राप्त हुई हो या कि कोई लाभ होगया हो तो उसका भी उपकारस्मरण यथाशक्तिमाननाही पड़ता है यही हेतु है कि दत्तात्रेयके चौवीस गुरू थे, क्योंकि उन्हें जिसीसे उत्तम शिक्षा मिल जाती थी वही उनका गुरू हो जाता था और बराबर उस का उपकार स्मरण माना करते थे, जैसे कि 'कुमारी कङ्कण वत्' इत्यादि, अर्थात् उन्हें कुमारी एक कङ्कणसे ही अकेला रहनेकी शिक्षा प्राप्त हुई थी, इसके अतिरिक्त गीताही एक ऐसा ज्वलन्त उदाहरण है कि विना कृष्णचन्द्रजीके उपदेश वीरवर अर्जुनकी प्रवृत्ति युद्ध करनेमें नहीं हुई जिसके अर्थ उन्होंने घोर तपस्या भी की थी, अस्तु जब लोकमें यहाँ तक देखा जाता है कि छोटेसे छोटे कामके लिए भी उपदेश कोंकी आवश्यकता रहती है और उनका उपकार स्मरण भी मानना पड़ता है तब तो जो ब्रह्मविद्या अत्यन्तगोप्य एवं अलभ्य है जिसके द्वारा वाङ्मनसागोचर निरवधिकवा त्सल्य श्रियःपति श्रीमन्नारायणकी प्राप्ति होती है उसके उपदेशककी न जाने कितनी बड़ी लोकमें आवश्यकता है और उस उपदेशक (आचार्य) के उपकार स्मरणकी अवधि फिर कहां तक है इसका बिचार सबको स्वयं करलेना

चाहिए, और ऐसी अलभ्य एवं सर्वोत्तम विद्या भी बिना योग्य गुरूके प्राप्त नही हो सकती तथा इस विद्याका ज्ञान भी प्रत्येक व्यक्तिको अत्यावश्यकहै एवञ्चइस महाविद्याकेलिए किसी महान् पुरुषपुङ्गवकाआश्रय अवश्य ग्रहण करना पड़ता है और वही विद्योपदेशक आचार्य या गुरु कहे जाते हैं इस बातका प्रतिपादन वेदपुराणादिमें भलीभाँति किया गया है जैसे कि "मातृदेवोभवपितृदेवोभव आचार्य देवोभव, (कठवल्पोपनिषद्) आचार्यवान् पुरुषोवेद, (श्रुति) अर्थात् मनुष्यके तीनही देव प्रधान हैं माता पिता और आचार्य---परीक्ष्यलोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमा यात् नास्त्यकृतः कृतेन तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् स मित्पाणिः श्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठंतस्मै सविद्वान् उपसन्नाय सम्य क्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय येनाक्षरं पुरुषंवेदसत्यंप्रोवा चतां तत्वतो ब्रह्मविद्याम्, इत्यादिश्रुतिबचन इसके प्रति पादक हैं "तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयमात्मनः, शाब्दे परेचनिष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्, (भागवते) अपने हित के ज्ञानके लिए शास्त्रोंके जानने वाले तथा ब्रह्मविचारमे लग्न गुरूके शरणमें अवश्य जावै अर्थात् गुरूकरे इत्यादि वाक्योंसे यह भी सिद्ध है जो कि कोई २ व्यक्ति अपने पिता हीसे मन्त्रोपदेश ग्रहण कर लेते हैं याकि स्वयमाचारी कह लाते हैं यह सर्वथा वेदविरुद्ध है वेद तो स्पष्टतया माता

पितासे अतिरिक्त गुरू करनेकी आज्ञा दे रहा है क्योंकि माता पिता तो केवल जन्म देनेके अधिकारी हैं और गुरू तो ब्रह्मविद्योपदेश से मनुष्यजीवनको सफल कर उसके हृदयान्धकार को सदाके लिए दूर कर देता है जिससे कि उस मनुष्य के दोनों लोक सुधरजाते हैं और अन्तमें उत्तम गतिको प्राप्त होता है, लिखा भी है "गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निवर्तकः–अन्धकारनिरोधित्वाद्‌गुरुरित्यभिधीयते' इत्यादि–एवञ्च यह बात सिद्ध हुई कि ब्रह्मविद्याके उपदेश ग्रहण करने के लिए उत्तम आचार्यकी आवश्यकता निरवधिक है, अस्तु अब यह देखना है कि इस अलभ्य पदार्थकी प्राप्ति कैसे हो सकती है तथा यह कौनसा अमूल्य पदार्थ है इसके लिये यहां सूक्ष्मतया उस विषयका दिग्दर्शनमात्र करादेना उचित है, वर्णाश्रमधर्ममें वर्तमानमानवोंके तत्तज्जातित्व सम्पादन के लिए जिस प्रकार मुख्यपंचसंस्कार किए जाते हैं ठीक उसीप्रकार ब्रह्मविद्योपदेश ग्रहण करनके लिये प्रत्येक व्यक्तियोंके परम वैदिक पंचसंस्कार किये जाते हैं इन्हीं पंचसंस्कारोंके द्वारा मनुष्य संस्कृत होकर ब्रह्म विद्या के ग्रहण करनेका अधिकारी होता है और फिर वह प्रत्येक वैदिक कर्म करते हुए सफलताका भागी होता है अन्यथा उसके किये हुये सभी कर्म निष्फल हैं इसहेतु प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह अपने इस अमूल्य मानवजीवन के

सुधारके लिये इन वेदोक्तपंचसंस्कारोंसे संस्कृत होकर योग्य आचार्यसे अमूल्यब्रह्मविद्याका उपदेश ग्रहण करे, वैदिक पंच संस्कार एही हैं, "तापः पुन्ड्रं तथा नाम मन्त्रोयागश्च पंचमः, अमीपञ्चैव संस्काराः परमैकान्तिहेतवः" इनमे पहला संस्कार ताप है अर्थात् शंखचक्रधारण, द्वितीय उद्ध्वर्पुंड्र तृतीय नामकरण, चतुर्थमन्त्रोपदेश, पंचम याग अर्थात् आत्मसमर्पण, यहीं समय उस ब्रह्मविद्योपदेशकाहै और इन्हीके अन्तर्गत वह भीहै जिसका प्रत्यक्षप्रकाश आचार्य द्वाराही हुआ करताहै, अस्तु अबरही इसबातके प्रमाण दिखलाने की बात सोतो वेदस्मृतिपुराणादिही इसके पर्याप्त प्रमाणहैं तथा निम्नलिखित ग्रन्थोंमे तो इसीका विस्तारही है जैसेकि सुदर्शनविजय, कूरकौशषडानन, नारायण सारसंग्रह, दुर्जनकरिपंचानन, तप्तमुद्राविजय, सच्चरित्ररक्षा, पाखण्डदण्डिन, दुर्वादविधूनन, इत्यादि अनेकों ग्रन्थोंमे भलीभांति दर्शाया गयाहै तथापि उपरोक्त ग्रन्थ सबको सुलभतया नहीं प्राप्त होसक्ते अतः उन्हीं सब ग्रन्थोंका सार भूत अंश यहां उद्धृत कर सर्वजन हितार्थ लिखा जारहाहै साथही साथ सरल हिन्दी मे उसका तात्पर्यमात्र लिख दियाहै जिसके अवलोकन से यह विषय सबको शीघ्र अव गत हो जायगा अव इस विषय पर विशेष न लिखकर यह बात यहाँ और बतला देना उचितहै कि यही संप्रदाय

साक्षात् श्रीविष्णुसम्बन्धी होनेके कारण वैष्णव संप्रदायहै यही परमवैदिकसनातनसिद्धान्त व सर्वोत्तमहै, अनादि कालसे इसकी सत्ता चली आतीहै बीचमे कुछ शिथिल सा होजानेके कारण श्रीलक्ष्मीजी द्वारा इसका पुनः प्रचार हुआ अतः श्रीसम्प्रदाय भी यही कहलाताहै, इसीप्रकार श्रीरामानुज स्वामीने अवतार लेकर इसकी पूर्णतया बृद्धि किया अतः श्रीरामानुज़ संप्रदाय भी इसीको कहतेहैं इसका मार्ग सात्विकता से भरापड़ा है इसमे किसी प्रकार बनावटी वस्तुओंका समावेश नहीं अतः इसका अवलम्बन प्रत्येक व्यक्ति या जातिके गौरव का उत्पादकहै तथा, ऐहलौकिक पारलौकिक कर्मों के सुधारने का इससे उत्तम मार्ग दूसरा नहींहै, "सर्वं विष्णुमयं जगत्" इस वाक्यसे जव संसार विष्णु मयहै तव श्रीविष्णु भगवान्के ही शरणग्रहण करने से अन्य देवताओं का भी सन्तोषहै, लिखाभीहै "यथातरोर्मूल निषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः प्राणोपहाराच्चयथे न्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या, इत्यादि, अर्थात् जिस प्रकार बृक्षके मूल सींचनेसे उसके शाखा पत्ता सव तृप्त हो जातेहैं और शरीर मे प्राणवायुकी तृप्तिसे सब इन्द्रियां जैसे तृप्त रहतीहैं उसी प्रकार सव देवोंको यदि साथही प्रशन्न करनाहै तो श्रीविष्णु भगवान्की पूजा करनी चाहिए और उनकी ही शरणागति ग्रहणकरनी चाहिए, यही

विष्णु भगवान् की शरणागति ब्रह्मविद्या का प्रधान अंगहै एवञ्च इसी मुख्य सिद्धान्तके योग्य आचार्यों द्वारा पंञ्च संस्कारोंसे संस्कृतहोकर भगवत्शरणागति ग्रहणकरना सर्वथा उचितहै ।

अस्तुअब उपरोक्त पंचसंस्कारोंके प्रमाण क्रमशः सूक्ष्म रीतिसे यहां लिखकर प्रकृत विषय समाप्त किया जाताहै पंच संस्कारों मे प्रथम शंखचक्रका ग्रहण करना बतलाया गयाहै अतः उसके प्रतिपादक श्रुतिबचन—

पवित्रंतेविततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्य्येषिविश्वतः अतप्ततनूर्नतदामोऽश्नुतेशृतास इद्वहन्त स्तत्समाशत, (ऋग्वेदे तृतीयाध्याये) अन्वयः, हे ब्रह्मणस्पते प्रभुस्त्वं विश्वतः, गात्राणि, पर्येषि, ते पवित्रं विततं, तेन अतप्ततनूः, आमः, तत् न अश्नुते, इत्, बहन्तः, शृतासः, तत्समाशत, (पदार्थः) ब्रह्मणस्पते, चतुर्मुखके नियामक प्रभुः प्रपञ्चकी चेष्टा सामान्य के हेतुसंकल्पकरने वाले, त्वं, आप, विश्वतः, जगत्के—गात्राणि शरीरों को—पर्य्येषि, अन्तर्यामी होकर व्याप्त करते हो—ते सर्व व्यापक रूप आपका पवित्रं सुदर्शनचक्र—विततं, अग्निसे तप्त कर भुजपर लगाने से उत्पन्न होने वाले किण वत्व सम्बन्ध से आस्तिक जन सामान्यमे रहने वालाहै, तेन उस सुदर्शन चक्रसे, अतप्ततनूः विनातपे हुए शरीर वाला, आमः अविनष्ट पापवाला है, (अर्थात् उसके प्रारब्ध

और संचित पाप दग्ध नहीं हुएहैं,) अतएव तत् परमात्मा को न नहीं अश्नुते प्राप्त होताहै, इत् इदं तप्त सुदर्शन को वहन्तः भुजपर धारण करने वाले, शृतासः दग्ध पाप वाले होकर तत् परब्रह्म को समाशत प्राप्त कर लेतेहैं । इस श्रुतिमे पवित्र शब्दका अर्थ सुदर्शन चक्रहीहै इसके लिए अनेक प्रमाणहैं, जैसेकि "सुदर्शनेचदर्भेच पवित्रंचणसूत्रके" यह वेदनिघण्टु का बचनहै, औरभी "सुदर्शनंसहस्त्रारं पवित्रं चरणं पविः सुदर्शनंहरेश्चक्रं पवित्रं चरणं पवि" रित्यादि, यह भी वेद निघण्टुकाही बचनहै, पद्मपुराण मे भी कहाहै "पवित्रंचरणंनेमिः हरेश्चक्रंसुदर्शनम् ॥ सहस्रारं प्राकृतघ्नं लोकद्वारं महौजसम् ॥ नामानिविष्णुचक्रस्य पर्यायेणनिवो- धमे" ॥ श्रीशास्त्रेऽपि"पवित्रंचरणं चक्रंलोकद्वारंसुदर्शनम्– पर्यायबाचकाह्येते चक्रस्यपरमात्मनः" ॥ पुनातित्रायतेचेत्यतः पवित्र मिति" (एकायन ब्राह्मणनिरुक्तम्) और श्रुतिमे जो तत्शब्दहै वह ब्रह्मवाचकहै । इसके लिए प्रमाण निम्न लिखितहैं–तदितिवा एतस्यमहतो नामभवति" "ॐतत्सदि तिनिर्देशोब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृत इत्यादि–

और भी अनेक श्रुति वाक्य इस विषयके प्रतिपादक हैं जिनमे दोचार प्रमाण यहां लिख देना उचितहै विशेष वाक्य विस्तार भयसे नहीं लिखे जा रहेहैं । पवित्रमित्यग्नि रश्मिर्वै सहस्रारः सहस्रारोनेमिः नेमिना तप्ततनूः ब्राह्मणः सा

पुज्यङ्सलोकतामाप्नोति (सामवेदे मैत्रायणीशाखायां) चरणं पवित्रं विततंपुराणं येनपूतस्तरति दुष्कृतानि तेन पवित्रेण शुद्धेन पूताः अतिपाप्मान मरातितरेम, लोकस्यद्वार मर्चिष्मत् पवित्रं ज्योतिष्मत् भ्राजमानं महस्वत् अमृतस्यधारा बहुधा दोहमानं चरणंलोके सुधितांदधातु (यजुर्वेदकटशाखा) मोक्षकामोनरः सुदर्शनधारणं कुर्यात् (अनुमितश्रुति वाक्यं तप्तमुद्राविजये)

चक्रंविभर्तिवपुषाऽभितप्तं बलंदेवानाममृतस्यविष्णोः सएतिनाकं दुरितानिविधूय विशन्ति यद्यतयोवीतरागा एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिन्हैरंकितालोके सुभगाभवामस्तद्विष्णो परमं पदंयेऽधिगच्छति लाञ्छिताः चक्रमादायाग्नौ प्रता यब्राह्मणस्य दक्षिणेबाहौधारयेत्, चक्रमुपविशन्ति येपाञ्चजन्यमादायाग्नौ प्रताप्य ब्राह्मणस्योत्तरेबाहौ धारयेत् ब्रह्मवादिनोवदन्ति (अथर्वणे)

देवोंकेपराक्रमभूत तपेहुएविष्णुके चक्रको जो शरीर पर धारण करतेहैं वे पापोंका नाशकर बैकुण्ठ लोक जातेहैं जिस लोकमे बीतराग तपस्वी लोग जातेहैं अतः उस चक्रके चिन्होंसे हम लोग अंकित होकर भाग्यशाली हों विष्णुका धाम वहीहै जिसमे चक्रसे चिन्हित होकर लोग जातेहैं चक्रको अग्निमे तपाकर ब्राह्मणके दक्षिण बाहुमे धारण कराना चाहिए, और शंखको तप्तकर बामबाहुमे यह

ब्रह्मवादियों का कथनहै । ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀
चमूषच्छ्येनश्शकुनोविभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानिविभ्रत्
अपामूर्मिंसचमानः समुद्रंतुरीयंधाम महिषोविवक्ति (ऋग्वेदे)
पञ्चभूतोंके विकार भूत शरीरसे न कभी जुदाई रखने वाला
और परमात्माका अंगभूतजीव भगवान्के शंखचक्रादि
आयुधोंको तप्तमुद्रा रूपसे यदि अपने भुजपर आचार्यद्वारा
धारण करलेतो वह जीव नित्यसूरियोंसे अनुगम्यमान होकर
बैकुण्ठके समीप पहुंच अपने आत्माको संसारसे उद्धार करने
मे समर्थ हो अपने सम्बन्धियोंको भी संसार सागरसे पारकर
नित्य सूरियोंका पूज्यवन मोक्षका भागी होताहै ।
गोविन्दस्यायुधान्यंगे विभ्रत्सुश्रोणिवैद्विजः ॥ तुरीयंधामतद्वि-
ष्णोर्महिष्ठ. प्राप्नुयादिति पूर्वोक्त श्रुतिमूलक मेतद्वाक्यं स्कन्द
पुराणे–
भगवान्के आयुध (सुदर्शन चक्र) को जो ब्राह्मण व
क्षत्रिय तथा वैश्य धारण करताहै वह पूज्य होकर विष्णु
धामको प्राप्त होताहै । लीलयापि लिखेद्यस्तु बाहुमूले
सुदर्शनम्, कुलकोटिं समुद्धृत्य लभते वैष्णवंपदम् । इत्यादि
अनेकवाक्य इसके प्रदिपादकहैं ।
निर्णयसिन्धौ तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायां
भविष्ये–शयन्याञ्चैवबोधिन्यां चक्रतीर्थेतथैवच, शंखचक्र
विधानेन वह्निपूतोभवेन्नरः ॥ देवशयनी व देवप्रबोधिनी

एकादशीको तथा चक्रतीर्थ मेमनुष्य शंखचक्रधारण विधिसे बह्निनपूतहो ।

सहोवाच याज्ञवल्क्यस्तस्मात्पुमानात्म हितायहरिंभजेत् सुश्लोक मौलेर्वर्म्मार्ण्यंगेष्वग्निनासंदधते (शतपथश्रुतिः)

याज्ञवल्क्य का बचनहै कि आत्महितार्थ मनुष्य भगवत्भजन करे और उन्हीके आयुधोंको अग्निसे तपाकर धारण करे।

प्रतेविष्णो अब्जचक्रेसुतप्ते जन्माम्भोधिंतर्तवे चर्षणीन्द्रामूले वाहूवोर्दधतेऽन्ये पुराणालिंगान्यंगे तावकान्यर्पयन्ति–

(इतिसामवेदे)

अग्निहोत्रंतथानित्यं वेदस्याध्ययनंयथा, ब्राह्मणस्यतथैवेदं तप्तमुद्रादिधारणम् । इतिपाद्मे ।

(तप्तमुद्राविषये स्मृतिपुराणादि बचन)

"पशुपुत्रादिकंसर्वं गृहोपकरणानिच–अङ्कयेच्छङ्ख चक्राभ्यां नामकुर्याच्चवैष्णवम् ॥१॥ स्त्रियासहैवकर्तव्यं गृहस्थस्यविधानतः–संस्कारपञ्चकंतेन भवेत्साधर्मचारिणी॥२॥ तापादिपञ्च संस्कारा गृहस्थस्ययथा विधि–ग्राचार्य्येणाद्वयोःकार्याः स्वगृह्योक्तविधानतः" ॥ ३ ॥

(शांडिल्यस्मृतौ) पशुपुत्रातिसमेत मनुष्यको शंखचक्रसे अंकित होना चाहिए। यथाविधि गृहस्थको सपत्नीक पञ्च संस्कारों से संस्कृत होना चाहिए, विनापत्नीके शंखचक्र ग्रहण करने से उसकी पत्नी सह धर्मिणी नहीं हो सत्ती।

"आद्यंतुशंखचक्रादि धारणंवैष्णवंस्मृतम्–पुण्ड्रंनामक्रियाचैव मन्त्रंचैवार्चनंहरेः ॥ १ ॥ संस्काराः पञ्चकर्तव्याः ब्राह्मणस्य विधानतः–विधिना शंखचक्रादिधारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम् ॥ २ ॥ अग्निनैवतुसंतप्तं चक्रमादाय वैष्णवः, दापयेत्सर्ववर्णानां विष्णुसालोक्य सिद्धये" ॥ ३ ॥ (पाराशरस्मृतौ) शंखचक्र धारण, उर्द्ध्वपुण्ड्र, नामकरण मन्त्रोपदेश, भगवत्सन्निधिमे आत्मसमर्पण, एही पञ्चसंस्कारहैं। विधानतः इन पञ्चसंस्कारोंसे ब्राह्मणको संस्कृत होकर सबवर्णोंको तप्तमुद्रा धारण कराना चाहिए इसीसे वह वैष्णव होकर विष्णु भगवान् के सन्निधिमे प्राप्त होगा। यदि यह कोई जाननेको इच्छा करे कि पूर्वमें कौन २ भागवत तप्तमुद्रादि धारण किए थे तो उनके लिए स्कन्दपुराणान्तर्गतनारायणब्रह्मसम्वाद यहाँ लिखरहाहूँ, धृतानारायणीमुद्रा प्रल्हादेन ध्रुवेनच बिभीषणेनबलिना रुक्मांगदशुकेनच ॥ मान्धात्राद्यम्बरीषेण मार्कण्डेयमुखैर्बुधैः" इत्यादि महाभागवतोंने तप्तमुद्रादि धारण किया था। द्वितीय संस्कार उर्द्ध्वपुण्ड्रहै अतः उसके प्रतिपादकश्रुतिबचन–"हरेःपादाकृति मात्मनोहिताय मध्येछिद्र मूर्द्ध्वपुंड्रं योधारयति सपरस्यप्रियोभवति सपुण्यवान् भवति समुक्तिमान् भवति–(अथर्वणोपनिषदि) अर्थात् अपने हितके लिए भगवान् के चरणारविन्दके आकारका जो तिलक धारण करता है वह दूसरेको प्रिय

होताहै पुण्यवान् होताहै और मुक्तिमान् होता है।

इसीके प्रतिपादक स्मृति पुराणादि बचन निम्न लिखितहैं।

"ऊर्द्ध्वपुंड्रस्यमाहात्म्यं वक्ष्यामिशुभदर्शने, धारणादेवमुच्येत भवबन्धाद्विमूढधीः, एकान्तिनोमहाभागाः सर्वभूतहितेरताः, सान्तरालं प्रकुर्वन्ति उर्द्ध्वपुंड्र पदाकृतिम् ॥ पुंड्राणां धारणार्थाय गृह्णीयाच्छ्वेतमृत्तिकाम्। (पाद्मे) पार्वतीजीके प्रति शिवजीका कथनहै कि उर्द्ध्वपुंड्रका माहात्म्य ऐसाहैकि जिसके धारणसे ही अज्ञानी भवबन्धनसे मुक्त होजातेहैं। सब प्राणियोंके हितकारी महात्मा लोग मध्यमें कुछ अन्तर रखकर भगवान्‌के चरणाकार का तिलक करतेहैं। तिलक धारणार्थ श्वेतमृत्तिका लेना चाहिए। "केवलस्योर्द्ध्वपुंड्रस्य धारणादपिमानवः, देहजैः पापसंघातैः मुच्यतेनात्र संशयः॥ (ब्रह्मरात्रे) आचम्यधारयेत् पुंड्रान् मृदाशुभ्रेणपूर्ववत्, नासिकामूल मारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत्, (भारद्वाज संहितायाम्) आचमन कर श्वेतमृत्तिकासे नासिकामूल से लेकर केशपर्यन्त तिलक करे। "उर्द्ध्वपुंड्रस्यमध्येतु अन्यद्रव्यं नधारयेत्, हारिद्रंधारयेद्वेणुपत्राकारंशुभावहम्"॥ उर्द्ध्वपुंड्रके बीचमें और द्रव्य न धारण करे केवल बाँसके पत्तेके आकार का हारिद्र चूर्ण (श्री) धारण करना चाहिये। उर्द्ध्वपुंड्रस्य मध्येतु रजनीचूर्णमुत्तमम्॥ लक्ष्मीरूपधरं नित्यमन्य द्रव्यं

न धारयेत् ॥ (अत्रिस्मृतौ) लक्ष्मीजीके रूपको धारण करने वाले हरदी चूर्णकोही तिलकके बीच धारण करे। लक्ष्मी रूपस्थानीय होनेके कारणसेही लोग हैरदी चूर्ण को श्री कहतेहैं। और यह शुभ सूचकभीहै क्योंकि हरदी चावल तथा दहीसे तैयारकी जातीहै, लोकमे भी देखा जाताहै कि प्रत्येक शुभकार्योंमे लोग हरदी दही चावल ललाट में लगातेहैं।

ऊर्ध्वपुंड्रस्यमध्येतु अन्यद्रव्यं नधारयेत्, विष्णुविम्बेन संस्पृष्टं हरिद्रां धारयेद्द्विजः ॥ (पञ्चरात्रे) उर्द्ध्वपुंड्रके मध्यमे और द्रव्य न धारण कर केवल विष्णु भगवानूके विग्रहमें समर्पित हरिद्र चूर्णही धारण करे।

ऊर्ध्व पुंड्र विहीनस्तु संध्याकर्म समाचरेत्, तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकञ्चाधिगच्छति ॥ (हारीतस्मृतौ) उर्द्ध्वपुंड्रसे हीन होकर सन्ध्यावन्दनादि यावत्कर्म करनेसे सब निष्फलहै। ललाटेच्छिद्रसंयुतंपुंड्र दंडाकारंसुशोभनम्॥ विप्राणाँसततंधार्यं स्त्रीणाञ्चशुभदर्शने ॥ (पाद्मे) विनाचैवोद्ध्वर्पुंड्र ण यःकुर्यात्कर्मवैदिकम् ॥ निष्फलंतस्यतत्कर्म भस्मन्येनाहुतिर्यथा ॥ (मात्स्ये) उर्द्धवपुंड्रके बिना यावत् बैदिककर्म भस्ममे हवन करनेके ऐसे निष्फलहैं।

(नोट) यहां केवल उर्द्धवपुंड्रकी उपादेयता मात्र बतलाई गईहै इसके धारण करनेका नियम देखना हो तो

प्रबन्ध पञ्चक नामक पुस्तकमें देखना चाहिए, यह पुस्तक स्थान से मिल सक्तीहै।

(मिश्रित प्रकरण)

"येकण्ठलसतुलसीनलिनाक्षमाला येबाहुमूलपरिचिन्हि[illegible] शंखचक्राः ॥ ग्रीवाललाटपटलेलसदूर्ध्वपुंड्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति" ॥ जिनके कण्ठमे तुलसी अथवा कमलाक्षकी मालाहै और जिनके भुजमूल शंखचक्रसे अंकि[illegible] हैं तथाच ग्रीवा व ललाटमे जिनके ऊर्द्ध्वपुंड्र शोभित [illegible] रहाहै ऐसे श्रीवैष्णव जन क्षणमात्रमे लोकको पवित्र क[illegible] देतेहैं। और भी, "धृतोर्द्ध्वपुंड्रः धृतचक्रधारी विष्णुंपरं ध्याय[illegible] योमहात्मा, स्वरेण मन्त्रेण सदाहृदिस्थं परात्परंयाति विशु[illegible] चेताः, और भी, ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदिवेतरः ॥ शंखचक्राङ्कित तनुस्तुलसीमञ्जुरीधर इत्यादि॥ तृतीय संस्[illegible] नाम करणहै अतः उसके प्रतिपादक स्मृति पुराणादि वचन "नामकर्मप्रवक्ष्यामि पापनाशनमुत्तमम् ॥ चक्रादिधारणं क[illegible] तत्रवै नामकर्मच" ॥ "नामधेयं सदास्यत्वं मुख्यमित्येतदुच्यते ॥ विनाकृतंचेद्विफलं श्रेयस्तस्यमहामुने" ॥ (पाराशरस्मृतौ पापोंके नाश करने वाले उत्तम नामकर्मको मैं कहता[illegible] चक्रादि धारण समयमेही नामकर्म भी होताहै, ऐसा न करने से मनुष्य की पुण्य क्षीण हो जातीहै। "गुणायो[illegible] चान्यानि विष्णुनामानि लौकिकैः—विशिष्टंवैष्णवंनाम सर्व[illegible]

कर्म सुचोदितम्" "नयस्य वैष्णवंनाम कृतमस्तिद्विजन्मनः अनामकः सविज्ञेयः सर्वकर्मसुगर्हितः" ॥ (हारीतस्मृतौ) अर्थात् विष्णु सम्बन्धी जितने नामहैं तद्विशिष्टहीनाम वैष्णवोंके भी होने चाहिए, अन्यथा वह सम्पूर्ण कर्ममे निन्दित रहताहै ।

॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ॥
तस्यतीर्थपदः किंवादासाना मवशिष्यते, इत्यादि-
(भागवते) अर्थात् जिसके नामसुन लेनेही से मनुष्य निर्मल हो जाताहै, तवतो जो उनके दासहैं उनके लिए क्या कमी है वह तो स्वयं निर्मलहैं ।
यह विषय भी अनेक ग्रन्थोंमे विस्तार पूर्वक लिखाहै यहांकेवल दिग्दर्शन मात्र कराया गयाहै ।
चतुर्थमंत्रसंस्कारहै उसके प्रतिपादक स्मृतिपुराणबचन- "शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि मंत्रसंस्कारमुत्तमम् ॥ यथोक्तंविष्णुनापूर्वं ब्रह्मणेपरमात्मना" ॥ "सर्वेषामेवमन्त्राणाँ प्रथमंगुह्यमुत्तमम् मन्त्ररत्ननृपश्रेष्ठ सद्योमुक्तिफलप्रदम्" ॥ सर्वैश्वर्यप्रदं पथ्यं सर्वेषां सर्वकामदम् । यस्योच्चारणमात्रेण परितुष्टोभवेद्धरिः ॥ "देशकालादिनियम मरिमित्रादिशोधनम् ॥ स्वरवर्णादिदोषश्च पारश्चरणिकंनतु" ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः-तस्याधिकारिणः सर्वे सर्वशीलगुणायदि ॥ (हारीते) श्रीविष्णुभगवान् पूर्वमें ब्रह्मासे इस चतुर्थ मंत्र संस्कारको

कहाथा, यह सम्पूर्ण मन्त्रोंमे श्रेष्ठहै गुह्य है सम्पूर्ण मनोरथोंके सिद्ध करने वालाहै मुक्तिप्रदहै इसके ग्रहण करनेमे किसी प्रकार देशकालादिका विचार नहींहै इसके अधिकारी सभी वर्णहैं यदि उनमें इसकी योग्यताहै तो। मानसंवाचिकंपापं कायिकञ्चत्रिधाकृतम्, द्वयस्मरणमात्रेण नाशंयाति सुनिश्चितम् ॥ (पाद्मे) अर्थात् त्रिधाकृतपाप इसद्वयमंत्रसे निश्चय नष्टहो जाताहै। उच्चारणात्मनोरस्य सर्वसिद्धिफलं लभेत्-- अनधीत्यद्वयंमन्त्रं नविप्रोनचवैष्णवः ॥ अचक्रधारिणं विप्रं योऽध्यापयतिदेशिकः ॥ शिष्येणहितोयाति नरकं रौरवंद्विजः ॥ (पाराशरस्मृतौ) मनु-मंत्र ॥ देशिक अध्यापक (आचार्य्य) नहिवक्तुँमयाशक्यं ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि व्यापकानाञ्च सर्वेषां ज्यायानष्टाक्षरोमनुः ॥ (हारीते) इत्यादि अनेक प्रमाणहैं परन्तु विस्तार भयसे यहां नहीं लिखे जाते।

पञ्चमयाग संस्कारका प्रमाण--"अथयागविधिंतत्वंवक्ष्ये संस्कारमुत्तमम् ॥ अभिवाद्य नमस्कृत्य प्रणिपत्य ततोगुरुम् ॥ तस्यप्रसादलब्धंवै गृहीत्वाविग्रहंहरेः, श्रीभूलीलादिसहितं सायुधंसपरिच्छदम् ॥ अर्चयेत् प्रयतोनित्यं यथाकालमतन्द्रितः अप्सुव्योम्नि तथार्चायाँ वह्नौहृदितथागुरौ" इत्यादि (पाराशरे) पञ्चमयाग सँस्कारहै अर्थात् आत्म समर्पण, इसकी विधि यहीहै कि मंत्र लेनेके बाद गुरूका साष्टांग कर उनके द्वारा प्राप्त हरिके बिग्रहको पवित्र होकर जल आकोश

अर्चावतार अग्नि हृदय तथा गुरूमें अनुसन्धान कर पूजन करे ।

(एकादशी निर्णयः)

विद्धावहुविधात्याज्या विद्धैकादश्युपोषणात्—पतन्तिनरक घोरेयावदाभूतसंप्लवः, (भगवच्छास्त्रे विद्धा एकादशी कदापि न रहे ऐसा करने से अनन्त कालतक नरक मे वास करना पड़ता है ।

एकादशी मे वेधका विचार—अरुणोदयवेलायां दशमीयदिदृश्यते एकादशींतां संत्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत्, अरुणोदयवेलामें यदि थोड़ी भी दशमी हो तो एकादशी विद्धा है उसको छोड़ कर द्वादशीके दिन उपवास करें अरुणोदय का विचार पञ्च २ उषाकालः षट्पञ्चाशारुणोदयः—सप्तपञ्चभवेत्प्रातः शेषः सूर्योदयःस्मृतः । अर्थात् ५५ दण्डका उषाकालमाना जाताहै ५६ दण्डका अरुणोदयमाना जाता है, ५७ दण्डका प्रातः काल मानो जाताहै, इसके बादका काल सूर्योदय कहा जाताहै ।

"अरुणोदयवेलायां नवमीयदिदृश्यते, द्वादश्यामुपवासश्च त्रयोदश्यान्तुपारणम्" ॥ ५६ दण्डयदि नवमी हो तो एकादशीके दिन उपवास नहीं हो सका तब द्वादशीको व्रत करे और त्रयोदशीको पारण करे ।

"उदये नवमी किञ्चिद्दशमी सकला यदि—द्वादश्यामुपवास

श्चत्रयोदश्यांतुपारणम्" ॥ उदयकालमें यदि थोड़ो भी नवमी हो और दशमी समग्रहो परन्तु एकादशीके दिन उपवास न करके द्वादशीमे व्रत करे और त्रयोदशीमें पारण—"नवम्यां च दशम्यां वा षट्पञ्च घटिका यदि—एकादश्यां नोपवासः कार्योविष्णुपरायणैः" ॥

नवमी अथवा दशमी ५६ दण्ड हो तो इस एकादशीका व्रत श्री वैष्णवों को नहीं करना चाहिए तब द्वादशीके दिन उपवास करे।

"बहुनात्रकिमुक्तेन सन्देहोयदिजायते एकादशींपरित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत्" (हारीतस्मृतौ) विशेष कहाँ तक कहा जावै यदि एकादशीमें किसी प्रकार सन्देह हो तो उस एकादशी को छोड कर द्वादशीको व्रत करे।

सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादशी वृद्धिगामिनी—द्वादश्यांलंघनं कुर्यात्त्रयोदश्यांतु पारणम्। एकादशी यदि सम्पूर्ण हो और द्वादशी कुछ बढ़ी हो तो भी द्वादशी के ही दिन उपवास करे।

यहां एकादशी का निर्णय सूक्ष्म रख दिया गया है विशेष देखना हो तो हारीतस्मृति निर्णयसिन्धु, भगच्छास्त्रादि ग्रन्थों में सब लिखा है।

(रामनवमीनिर्णयः)

मेषेपूषणिसंप्राप्ते लग्ने कर्कटसंयुते—आविरासीत्सकलया कौश-

स्थायांपरःपुमान्' (विष्णुस्मृतौ) मेष की संक्रान्ति तथा कर्कलग्नमे रामचन्द्रजी का अवतार हुआ था।

"चैत्रेमेषेसितेपक्षे नवम्यांञ्चपुनर्वसौ' मध्यान्हे कर्कटेलग्नेजातो रामः स्वयंहरिः' (स्कन्दपुराणे) चैत्रमास मेषकी संक्रान्ति, शुक्ल पक्ष, नवमीतिथि, पुनर्वसु नक्षत्र, मध्याह्न समय, कर्क लग्न मे रामचन्द्रजी का अवतार हुआ था सिंहेमेषेच संक्रान्ता वष्टमीनवमीतथा, उपोष्या वैष्णवैः सर्वैर्नतुकर्कटमीन योः' (दशनिर्णये) जन्माष्टमीका व्रत सिंहके सूर्य जब हों तभी करे कर्क के सूर्य रहते हुए कदापि न करे, इसी प्रकार रामनवमी का व्रत मेष के सूर्य रहते ही हुए करें मीनके सूर्य हों तो कदापि न करें।

(जन्माष्टमी निर्णयः)

बर्जनीयाप्रयत्नेन कृत्तिका संयुताष्टमी । सप्तमी संयुतावापि-त्याज्या धातृसमन्विता, (जयोत्तरसंहिता) कृतिकासे युक्त अष्टमी का व्रत न करना चाहिए, रोहिणी से युक्त भी जन्माष्टमी यदि सप्तमी से विद्ध हो तो भी व्रत न करे। अरुणोदयबेलायां कलयाकृत्तिकायदि तद्युक्तांरोहिणींत्यक्त्वा परत्र समुपोषयेत् (शाण्डिल्ये) अरुणोदयवेलामे एककला भी कृत्तिका हो तो उससे युक्त रोहिणी का व्रत नकर दूसरे दिन व्रत करे।

पञ्चमव्यंयथाशुद्धं नग्राह्यंमद्य संयुतम्–रविभिद्धापरित्याज्या,

रोहिणीसहितायदि, ॥ पञ्चरात्रे ॥ अति शुद्ध भी पञ्चगव्य यदि मद्यसे मिश्रित हो तो नहीं ग्रहण किया जाता उसी प्रकार सप्तमी से विद्ध अष्टमी भी परित्याज्य है।

"उदयेचाष्टमीकिञ्चित् नवमीसकलायदि-रोहिण्याशुद्धयायुक्ता सैवोपोष्यामहाफला" ॥ (शाण्डिल्ये) शुद्धरोहिणीसे युक्त उदय कालमे थोड़ी भी अष्टमी हो और समग्र नवमी हो तों उसी दिन व्रत करे।

"अष्टम्यांवा नवम्यॉंवा दशम्यांवातथापुनः-रोहिणीतुयदा कृष्णेपक्ष आद्याऽद्विवर्जिता" (वशिष्ठः) अष्टमीके दिन अथवा नवमी व दशमीके दिन भी कृष्णपक्ष मे कृत्तिकासे रहित रोहिणी मिले तो उसी दिन व्रत करना चाहिए।

"कलामात्रापि संक्रान्तिर्विद्यतेचोत्तरेयदि-उपवासश्चकर्तव्यो वैष्णवैर्विबुधोत्तमैः" ॥ (सात्वतसंहितायाम्) कलामात्र भी सिंहकी संक्रान्ति यदि हो तो उस दिन व्रत करना चाहिए।

"अश्विन्यांवा नभस्यॉंवा यदा व्याघ्रस्थितोरविः-तत्रोपवासं कुर्वीत नवालाककर्कसंयुता" (शाण्डिल्यस्मृतिः) सिंहके सूर्य कुँवार मास अथवा भाद्रमासमे हों तो उपवास उसी मास मे करना चाहिए, "कन्या और कर्कके सूर्यों मे नहीं।

"कलामात्रेऽपिसिंहार्के कन्यार्क सकलंदिनम् ॥ तस्मिन्नुपोष्यं विधिवन्नसिंहादि दिनत्रयम्" ॥ (वशिष्ठसंहिता) कलामात्र भी सिंहके सूर्य हों और समग्र कन्याके सूर्यहो क्यों न हों

परन्तु उपवास उसी दिन करे, सिंहके संक्रान्ति को लगे यदि ३ दिवसही हुए हों तो उस अष्टमी का व्रत निषिद्ध है। यहां सूक्ष्म रूपमे इनका निर्णय लिखा गयाहै विशेष देखना हो तो जयन्ती निर्णयादि ग्रथोंमे देखना चाहिए।

हिन्दी अनुवादक—
गयाप्रसादशर्मा शास्त्री,
(साहित्य भूषणः)

(श्रीफलाहारिस्वामिनामभिनन्दनपत्रम्)

श्रीरङ्गनाथाश्रयगद्यगाथा सम्वादनिर्यापितकालबाधः, श्रीसम्प्रदायोचितमुक्तिदायो वैराग्यसौभाग्यनिधिःसुधीरः। तत्वत्रयाविष्करणप्रचण्डश्वेतोवपुर्वाक्दमनत्रिदण्डः, कौवेरदिग्जावनिदेवताराड्रामानुजीयःप्रथमःपरिव्राट् ॥२॥ रङ्गार्चनौत्सुक्यमना निरासो निष्किञ्चनोऽनन्तधनाभिलाषी, भिक्षु प्रधानोप्यनुपाददानः कैङ्कर्यसाम्राज्यपदाभिधानः ॥३॥ यात्रासुतीर्थीकृतविश्वमात्रो मोहार्तलोकाभिमतार्थदोहः। संसारसिन्धूत्तरणार्थ बन्धुर्मायान्ध दृग्भारत भास्कराभः ॥४॥ प्रज्ञास्त्रसंछिन्नकुतर्कजालः संन्यासिमालारचनाविशालः। वेदान्तसिद्धान्तितविष्णुदेवध्यानैक तानोऽर्थितसाधुसेवः ॥५॥ विद्यास्वधर्मा चरणात्मयोगप्रत्यस्तभोगाभरणादिरोगः ॥ पारेकवेरात्मजमत्युदारे श्रीशार्ङ्गिचेताः कृतसन्निकेतः ॥६॥ श्रीभाष्यकारान्यतरावतारः श्रीकृष्णभक्त्याजित मारसारः ॥ धीमान्सदाचारिवरस्त

पस्वी श्रीमान्फलाहारिमुनिर्मनस्वी ॥ ७ ॥ सम्राट्‌यतीनामुदधिमतीशं विश्राट्श्रुतीनांगुणसंगतीनाम् ॥ रीवाँ पुरीणामतिथिर्हरीणां भक्ताग्रणीरस्ति शिरोमणिर्नः ॥८॥ धन्यावदान्याजगदेकमान्या विद्यानवद्याशयसन्निषद्या ॥ सन्तो भवन्तोऽतुलपुण्यवन्तोह्यन्तेष्वनतेकुशला रमन्ते ॥९॥ आविश्वसर्गादधुनैवजातो विष्णोःकृपापात्रमहंपृथिव्याम् ॥ यत्सन्निधौवैष्णवयूथनाथः स्वामीफलाहारिमहर्षिरायात् ॥१०॥ इतिश्रीलक्ष्मणारामे संपूजावाङ्मयीकृता ॥ श्रीफलाहारिसंप्रीत्यै बदरीधीमतार्पिता ॥११॥

सम्बत् १९७८ मे श्री रँग जी वाले फलाहारी स्वामी श्री लक्ष्मणबाग पधारे थे उस समय इन पद्यों द्वारा आपका स्वागत किया गया था ।

(श्री सम्राट् विश्वविजयघोषणा)

प्राक्सिद्धनानाविधशिल्पशास्त्रै रुल्लासयन्भारतजन्मभाजः
विद्यालयैःपण्डितवर्यवृन्दान्जीव्याच्चिरंपञ्चमजार्जसम्राट्॥१॥
अत्त्युत्भटाःजर्मनजातिवीराः शस्त्रास्त्रवैचित्र्यमवाप्ययस्य ॥
शीघ्रं लभन्तेशलभत्वमाजौ जीव्याच्चिरंपञ्चमजार्जसम्राट् ॥२॥
व्योम्निक्षितौवारिणिसंश्रयाणात् संज्ञाजितोदासरथीचयेन ॥
सद्धर्मगोप्ताष्टदिगीशतेजाःजीव्याच्चिरंपञ्चमजार्जसम्राट्॥३॥
वर्णाश्रमाचाररतिंनृलोकैः संग्राहयन्दीनजनैकबन्धुः ॥ श्रीवान्धवाधीशमुखाब्जमित्रःजीव्याच्चिरंपञ्चमजार्जसम्राट् ॥ ४

श्रीमान्दयालुःविजयप्रहृष्टो राज्येऽभिषिच्याशुगुलाबसिंहम् ॥
संपालयन् विश्वजनीनमेनं जीव्याच्चिरंपञ्चमजार्जसम्राट् ॥५॥
यद्राजधानीखलुलन्दनाख्या संगीयतेनन्दन॥टिकेव ॥
यत्रामराभाः मनुजा लशंते जीव्याच्चिरं पञ्चम जार्जसम्राट् ॥
यत्सुप्रबंधादकुतोभयास्तेनानामतीयाःकिल भारतीयाः ॥
स्वेस्वेऽधिकारेनियमान्वहंतिजीव्याच्चिरंपञ्चमजार्जसम्राट् ॥७॥
कार्णाटकाः द्राविड़गुर्जरीयाःतैलगिका बांधवमागधीयाः ॥
गांधारपाञ्चालमरुस्थलीया गौड़ोत्कलाःमालवनैषधीयाः ॥८॥
कास्मीर काम्बोज कलिंगमत्स्याः बंगांविदेहाःकुरवोविदर्भा ॥
सौवीरसौराष्ट्रसुसैंधवीयाः कैकेय कारूष हिमालयस्थाः ॥६॥
येपुण्यभूमिस्थजनाः सहागं प्राणैर्धनैर्वास्वजनैरकार्षुः ॥
तेषामभीष्टं सुतरांवितन्वन्जीव्याच्चिरं भारत चक्रवर्ती ॥१०॥
श्रीलक्ष्मणाराम सुभक्तमाली गायत्यदः शांतिसमाजशाली ॥
सर्वोपकारेष्वनिशं प्रशन्नः श्रीवैष्णवो श्री बदरीप्रपन्नः ॥११॥

सम्बत् १६७७ मे इनपद्यों द्वारा सम्राट्की विश्वविजयघोषणा का उत्सव मनाया गया था-

(श्री बीकानेरनरेशस्याभिनंदनपत्रम्)

अथ श्रीलक्ष्मणारामप्रसादोऽभीष्टदो नृणाम् ॥ गंगासिंहोदयं कुर्यात् वाङ्मयो बदरीकृतः ॥१॥ अग्निप्रचेतोऽनिलयंत्र जालः संग्राम शूरोऽरिगणान्तकालः ॥ न्यायान्नयज्ञागमशिल्पशालः जागर्तिबीकानगरीनृपालः ॥ २ ॥ सत्पुष्पकोद्यानसरोवरेण

चन्द्रप्रभैर्हेमगृहैश्च काम्यैः ॥ कान्तालकां श्रीगजनेरधामा कौवेरमाकर्षतिमानसंच ॥३॥ सृष्ट्वाविधातापिनदीः सहस्रं तृष्णातुरं मारबमा-लोक्य ॥ गङ्गानृसिंहंगुणवारिराशिं तुष्य त्यजस्रं मरुभुषुकृत्वा ॥४॥ सौमेरवैः पंचनदीश्रुतोयैः सञ्जीव नीं निर्जलदेशजानाम् ॥ गङ्गानृसिंहोऽपरदेवकुल्यां सम्पा दयन् भातिभगीरथश्री ॥५॥ रीवाँधिपाद्यावनिपाल पद्मानुद् घाट यन्नीतिविदीप्तजालैः प्राग्दिग्वधूव्रांधवदुर्गरम्यांगङ्गानृसिंहो ऽर्कउपेत्यदीव्यात् ॥६॥ रीवाँन्त सौभाग्य सुमंगलानां मान्यैर्व दान्यैरुषितानृदेवैः ॥ गङ्गानृसिंहोऽपि गुलाबसिंहं प्रेमाब्धि नीरैः परितोऽभिषिच्यात् ॥ ७ ॥ गन्धर्वगीतोज्वलकीर्तिबा सः संगूहितानङ्गधनांगनाशः ॥ स्वाराज्यचिन्ता कुलदेशवेश स्वास्थ्यप्रदानार्थमहोपदेशः ॥८॥ विश्वद्रुहांमूर्द्धभुजोरुकर्ती भक्त्यावशीकारितचक्रवर्ती ॥ गङ्गानृसिंहोऽखिलकार्यतन्त्रीभू यात् सदापञ्चमजार्ज मन्त्री ॥९॥

सं॰ १९७८ मे श्री दादू साहिबा रीवांके विवाहोत्सवमे पधारे हुए श्रीमान् बीकानेर नरेशकके सम्मानार्थ इन पद्यों की रचना की गई थी।

(श्रीवान्धवेशसुमङ्गलानुशासनम्)

(श्रीपति के परमानुग्रहसे सांम्राज्य पद प्राप्ति)

हरिः सद्बुध्यानुग्रहदमनकृद्विग्रहभृतां, दिगीशैरष्टा भिस्सहगुण विभूत्या दिभिरलम् ॥ सुपात्रंगोविन्दं सकल

सुमनोराज मुचितं पुरींरोंकाँ युञ्जन् रमयतु सदानन्द निवहैः ॥ १ ॥

(अभिषेक प्रकारः)

अथैनं भूदेवी दिग्भिकरगै हैंम कलशै र्वियद्गङ्गा नीरैरपि सुरभिरैरावतधृतैः ॥ शुभाशीर्भिर्लोका द्विजपरिषदो वेद विधिना प्रजाप्रेमामत्रं प्रगात मभि षिञ्चन्तु मुदिताः ॥२॥

(लोक पालों से लब्धोपहार वर्णन)

सुधास्रावं छत्रं दिशतु वरुण श्चन्द्र सुषमं कुवेरः सौवर्णा सनममल मिन्द्रोपि मुकुटम् ॥ हरि स्तेजस्सौ दर्शनमरिचयं पादुक मिला नभश्चास्मैनित्यं कुसुममनिलश्चामर महो ॥३॥ नरेशाद् विश्वेशास्सु नयमखि माला समुदितासतां सेवाद्रव्यं सदसिरघु राजस्य विदितम् ॥ जनानुज्ञा श्रीवेंकटरमण निष्ठा प्रति हताभिधा नारीसम्पद् वरयतु गुलाबं गुणनिधिम् ॥४॥

(प्रियप्रजाश्वासनोपदेश)

महाराज्यं लब्धा गुरुजन पदाम्भोजभजनाद् गुणैर्मैत्री मुख्यै र्बहुमति निरस्तात्मिक बलम् ॥ प्रभुश्लेषोत्कण्ठं जनपदमिहा स्वासितुमना गुलाबः सद्वृत्तं पुनरपि समुल्लासयतिशम् ॥५॥

(विशेषकम्)

रिपुक्षोदे लक्ष्येप्यतिरथ किरीटी स्थिरमति र्यशस्क द्वीराणां सदन विजयी शन्तनु सुतः ॥ प्रशास्ता दुष्टानां मनसि कृत वीर्यात्मज नृपः शरण्योदीनानां शिविरिवरणो

वात तनयः ॥६॥ मही दुग्धाभीष्टः पृथुलतर कीर्तिः पृथुविभु र्वलिर्भक्त्या विष्णो रतिथि यजेन रन्ति सुरधोः ॥ प्रपन्नानां धुर्यः प्रियचरितनाभागतनुजोययातिर्धर्मत्त्वे जनक इव सत्कर्मणिरतः ॥७॥ प्रभावे शार्दूलः कनक गिरिमूलः कुल धृतौ प्रदाने श्रीकर्णः सुधित किरणोऽदर्णां प्रियतमे ॥ चिरायुर्मार्कण्डेय इव फलवान् भर्तृहरि वद्गुलावःस्याच्छ्रीमा निति मम सुवांछो प्रतिहरिम् ॥ इत्यष्टकैः श्रीवदरी प्रपन्नः सद्रत्न सिंहासन वान्धवेशे–श्रीमद्गुलाबेऽष्टदिगीशतृत्वं साम्राज्य लक्ष्मी तिलकं व्यधत्त ॥६॥

॥ इतिशम् ॥

सं० १९७६ में श्रीमान् महाराजा सा० बहादुर श्री गुलाब सिंह जू देव रीवाँ नरेश के राज्याभिषेकोत्सव में इन पद्यों द्वारा श्रीमान् की शुभ कामना की गई थी—

(श्री बान्धवेशायुध वर्णनम्)

विद्युज्जवं श्रवण भिद्यमदण्ड कल्पं क्रूर द्विपादिहननैक शराग्नि तल्पम् ॥ बज्रध्वनि त्रुटित शात्रव जीवनाशं भीमाकृति प्रतिरव प्रलपद्दशाशम् ॥ १ ॥ है मात्तराङ्कित बपुर्वृहदास्य भाजं प्रोद्वेजितान्य धरणीश महासमाजम् ॥ दिग्पाल शक्ति भरितं हरिभक्तिगम्यं सम्पत्ति सञ्चय करं बहु शिल्प रम्यम् ॥२॥ संग्राम तीर्थ सुमुखोज्झित जीवनानां ज्ञानं विनापि परिपूत हृदाङ्गनानाम् ॥ मोक्ष प्रदान पटु

तत्वमिवेश्वराख्यं राजर्षिवर्य्यमुकुटा बलिवन्दनीयम् ॥३॥
दुःखस्थलेमहतिघोर भयेऽरिमध्ये छात्रेऽथि स्थितिवतां समरे सहायम् । भक्ताम्बरीष पृथिवीपतिचक्रवर्ती प्राप्तोग्रसाधन सुदर्शनहेतिशीलम् । ४ ।

यस्मिन्निधाय विपुलं निजराज्य भारं सम्राजते सदसि भूप गुलाब सिंहः । श्रीवैष्णवो विबुध गोद्विज धर्मसेवी तदीप्यतां सपदि बान्धव राज शस्त्रम् ॥ ५ ॥

दिग्दन्तिकुम्भगिरिभेदन तीव्रशक्ति व्याघ्रास्य भीति मशनिप्रभशब्दवेगाम् । स्वर्णाक्षरैरुचिरनैज यशोनुवादैः संभूषितां ललित लन्दन पत्तनेषु ॥ ६ ॥

आग्नेय मुक्त गुटिकोद्धृतदुष्टसत्वां दानाहवोत्सव करेण दधद्विनालीम् । अभ्याहतांसुकृतसिद्धिकरी मिवाज्ञांविभ्राजते जगति वीरगुलाब भूपसिंहः ॥ ७ ॥

श्रीव्याघ्रदेवकुलपद्म सहस्रभानो वीरप्रभो गुणनिधेरि सभिक्षकृशानो । श्रीमन् गुलाब नरनाथ विरोधि संघानृशस्त्रास्त्रतः सुजहि दण्डकवन्यसिंहान् ॥ ८ ॥

श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर रीवाँ नरेशके बन्दूकमे लिखे जाने के लिये सं॰ १९८० मे इन पद्योंका निर्माण किया गया था ।

(कुरुक्षेत्र जीर्णोद्धारार्थभारतीयप्रोत्साहनम्)

श्रियःपत्युरिच्छानुकूलात्मबोधाः कुरुक्षेत्रतीर्थं व्यधुर्येसुधोधाः

तदीयात्मजा भारतीया महान्तः पुनर्जीर्णं मुद्धारयन्तो जयन्तु ॥ १ ॥ रथैरादिराजौरसः सच्चरित्रो बिचित्रै रथैः समनाकं बिधित्सुः, द्वितीयोरविर्योगजैरस्तनिद्रः समुद्रान् प्रजाप्रेम बद्धश्चकार ॥ २ ॥ यथासागरः सूर्य्यवंशैकमूलः धरित्रीबधूरत्नकाञ्चीदुकूलः दिगंतामनंतां समुल्लासयंछ्रीनिबासालयो भाति साम्राज्यलक्ष्मीम् ॥ ३ ॥
पुराधातृधाम्ना समानीय गङ्गा महोभूमहिष्याः शरच्चंद्रहारा म् तथापाद्यमर्घ्यं हरेश्चार्प्यकश्चिन्नृपोजीब्यातीनार्कंबंशेषुधन्यः ॥ ४ ॥ यशः शुक्लशाटी लसदिग्बधूटी समाश्लेष्टुकामा महा भाग्यबंत स्तथा बांधबाधीश मुख्या महीपाः स्वसन्तानधर्मं सदै वाचरन्ति ॥ ५ ॥ इदं श्रीभारतीयोनां राज्ञां प्रोत्साहहेतवे स्मारयन् बदरी शर्म्मा जगत्प्रेमास्पदो भवेत् ॥ ६ ॥
उपरोक्त पद्य रामप्रपन्नाचारी कुरुक्षेत्र निवासीके रामानुज कूटके जीर्णोद्धारार्थ उन्हीके प्रार्थना करने पर सम्बत् १६८१ मे बनाये गये थे।
उत्साहोषधिर्वलादहिसमान् मन्त्रैर्जनान् गारुडैः,लोकारीन्परिकम्पयश्च सहितो विद्यायुधैराहवे। रीवांधीशहितैकचिन्त न सुधीरेजी महासाहवः इन्दोर्मण्डलतः सुधागतिरसाबन्वर्थ नामा भवेत्।
यह पद्य प्रसून सम्बत् १६८० मेमार्तण्ड हिन्दी स्कूल खुलने के महोत्सवमे श्रीमान् एजी जी साहब बहादुर को प्रसाद रूप मे दिया गया था।

❀ इति ❀

'शुद्धि-पत्रम्'

नं०	अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्टांक	पंक्ति
१	सहस्त्रमूर्ध्ने	सहस्रमूर्ध्ने	१	३
२	भूलत	भूतल	७	१२
३	पन्न	प्रपन्न	६	५
४	पुरुषेऽपित	पुरुषेऽर्पित	६	११
५	सेवनयैव	सेवनेनैव	स्तोत्र २	१७
६	दुरुहा	दुरूहा	३	२
७	परिग्रहेण	परिग्रहेणा	३	६
८	समुन्मीलयन्ति	समुन्मूलयन्ति	३	१३
९	अत्रायमभि	अत्रायमाभि	३	१४
१०	निष्टास्पन्देषु	निस्पन्देषु	४	१
११	तोष्टूयेरन्	तोष्टूय्येरन्	४	२
१२	आब्रम्ह	आब्रह्म	४	३
१३	मनुरूपेण	मनुरूपेति	४	८
१४	यद्यपि	यदपि	४	८
१५	गमंयतः	गमयन्तः	४	१०
१६	रशनाभिश्चा	रसना भिश्चा	५	१५
१७	श्रुतिसकल	श्रुतिशकल	५	२१
१८	वर्णात्म	वरणात्म	६	८
१९	व्याकुलान्	रहितान्	७	१३

२०	श्रीमन्नारायस्य	श्रीमन्नारायणस्य	७	१८
२१	रनाज्ञतोऽपि	रनाज्ञतस्यापि	८	२
२२	निवर्तं	निर्वर्त्तं	८	११
२३	साधुजना	साधुजन	८	१६
२४	भगवतनिग्रहं	भगवतोनिग्रहं	९	८
२५	वाताभिज्ञानाँ	वार्ताभिज्ञानां	९	६
२६	चिद्विशेषा	चिद्विशेषा	९	११
२७	साम्यभाव	साम्यमाव	९	१२
२८	नादर्शनेन	नांदर्शनेन	९	१३
२९	शेष	शेषि	९	१४
३०	रद्रान्	रुद्रान्	११	४
३१	प्रत्ययेऽपि	प्रत्तेऽपि	११	१९
३२	योगद्रा	योगनिद्रा	१२	८
३३	निकर्ष	निष्कर्ष	१२	१६
३४	जनिभः	जनिभिः	१३	७
३५	इतिकोःब	इतिकोषः	१४	१
३६	वस्थाया	वस्थाय	१४	१५
३७	विशेष	विशेषा	१४	१९
३८	व्यज्ञते	व्यज्यते	१४	२०
३९	प्राचुरभाण्ड	प्रचुरजनभाण्ड	१५	९
४०	भक्त	भाक्त	१५	१६
४१	यद	पद	१५	१८

४२	तस्थाःप्रतीते	तस्याप्रतीते	१५	२०
४३	साङ्गसासरस्क	साङ्गसशिरस्क	१७	१६
४४	यथावगत्यो	यथावदवगत्यो	१७	२०
४५	व्याख्यानायशङ्काना	व्याख्याना	१८	४
४६	एकदेशितत्वेन	एकदेशिमतत्वेन	१८	५
४७	मिधातुमर्हति	मिधानमर्हति	१८	१०
४८	विशेषस्तृणीमहै	विस्तृणीमहे	१८	१४
४९	वतारणा	वतरणा	१८	१८
५०	देश	देशि	१८	२०
५१	व्याख्यानेन	व्याख्यान	१८	२१
५२	संहता	संहिना	१८	४
५३	लघीयसतॉं	लघीयस्तां	१९	४
५४	शिरसु	शिरःसु	१९	१३
५५	संपाद्येत	संपद्येत	२०	१०
५६	शारीरिक	शारीरक	२१	१०
५७	तार्थसापन	तार्थसाधन	२१	१४
५८	विगीम्	विगीतम्	२१	२१
५९	सेचनैः	०	२२	१
६०	निवर्त	निर्वर्त	२२	६
६१	पदेन	पद	२३	२०
६२	रूपाय	रूपाया	२४	७
६३	रसिद्दे	रसिद्धे	२४	७

६४	बलेशा	क्लेशा	२४	११
६५	पय्यलोंच्य	पर्यालोच्य	२४	१३
६६	तरणात । अजह	तरणात् अजह	२४	१८
६७	मनुष्याष्टेयं	मनुष्यानुष्ठेयं	२६	६
६८	नुभस्य	नुभवस्य	२८	८
६९	तात्पय	तात्पर्य्यं	२९	२१
७०	स्वातं	स्वान्तं	३३	१
७१	निगृह्नयात्	निगृह्णीयात्	३३	८
७२	परामर्शि	परामर्षि	३३	१४
७३	वृद्धश्चः	वृद्धश्च	३५	५
७४	कर्मभूतौ	दमनकर्मभूतौ	३५	१३
७५	निघे	निषेधे	४०	२०
७६	क्रसेण	क्रमेण	४४	१७